अंक : १४४

अक्तूबर-दिसंबर २०१८

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

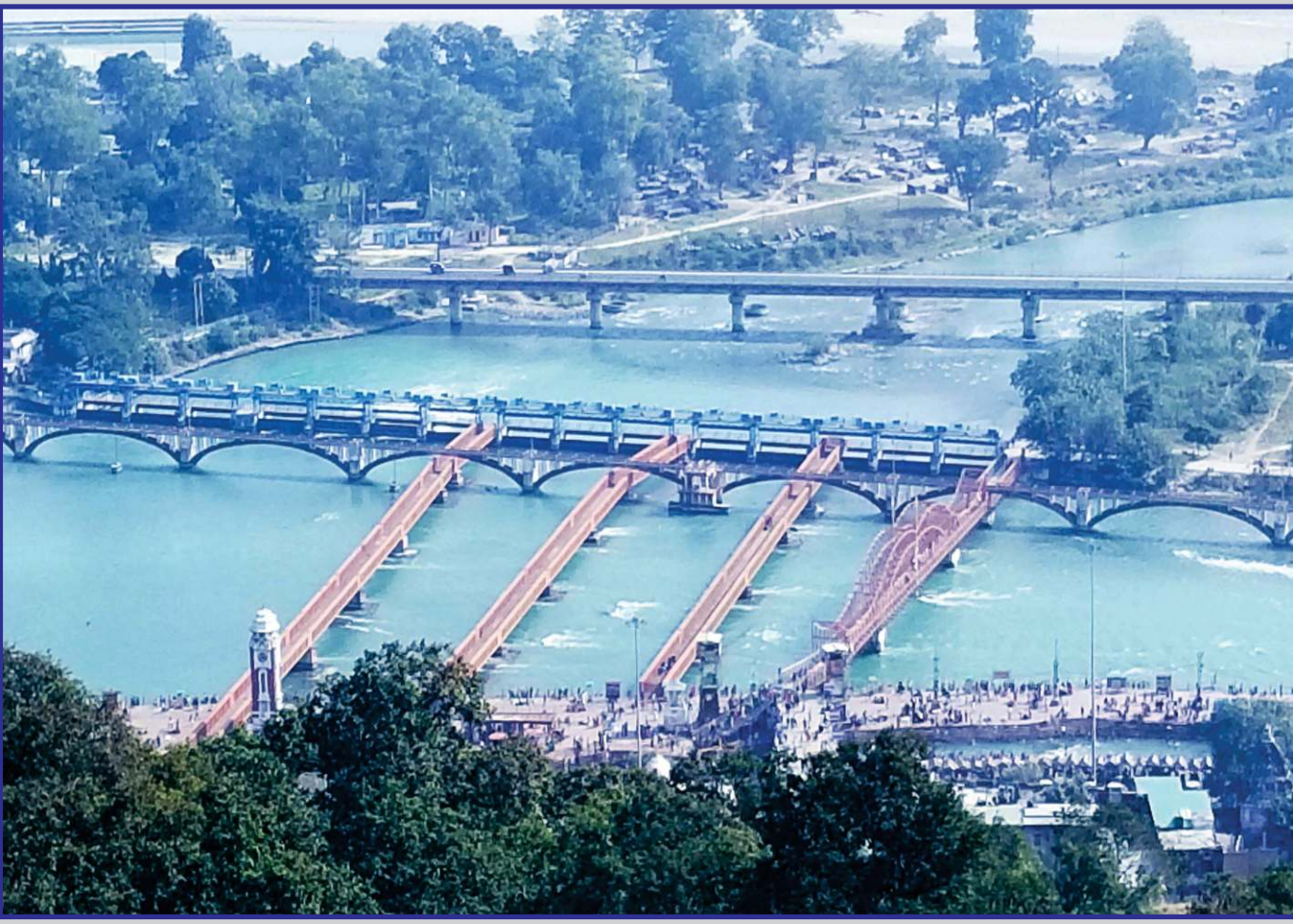

कहानियां

● डॉ. सुधा ओम ढींगरा ● हरी प्रकाश राठी
सुरभि बेहरा ● अमिता नीरव ● सैली बलजीत

आमने-सामने
कमलेश भारतीय

सागर-सीपी
डॉ. कमल किशोर गोयनका

२० रुपये

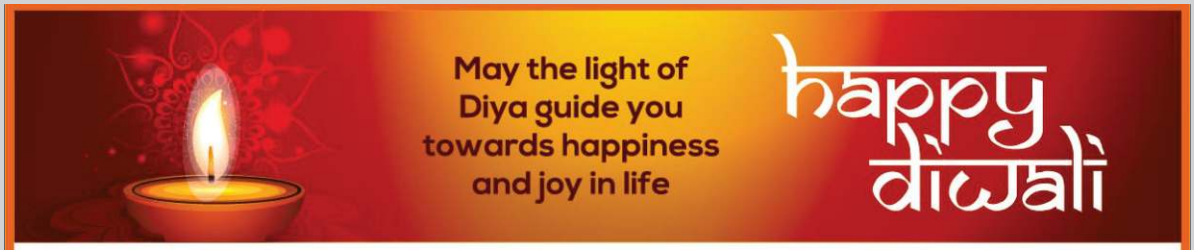

May the light of Diya guide you towards happiness and joy in life

happy diwali

ALL LOANS UNDER ONE ROOF

HOME LOAN

CAR LOAN

BUSINESS LOAN

UDYOGINI

Special scheme for women

* T&C apply

Interest on daily reducing balance • Minimum Paperwork
Speedy Loan Approval • Attractive Interest Rates • Easy and Fast Processing

Our Other Attractive Schemes:

Gold Loan | Educational Loan

SMS 'LOAN' to 92231 78900

जनकल्याण

(Scheduled Bank)

JANAKALYAN SAHAKARI BANK LTD.

Come and See the Change...

f | in

www.jksbl.com • Toll Free: 1800 225 381

अक्तूबर-दिसंबर २०१८
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
● **कैलीफ़ोर्निया संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। ऐसा भी होता है - सुधा ओम ढींगरा
।।१३।। भजनिया बॉस - हरी प्रकाश राठी
।।१९।। बुझती आंखों की उम्मीद - सुरभि बेहरा
।।२७।। झरता हुआ मौन - डॉ. अमिता नीरव
।।३३।। कोई भी नहीं... - सैली बलजीत

लघुकथाएं

।।१२।। फ़ैसला, भेड़चाल / राजकमल सक्सेना
।।१२।। कुली / डॉ. एन. एन. साहा
।।४०।। मां का मन / अशोक वाधवाणी

कविताएं / ग़ज़लें / मुक्तक

।।१५।। गाय-गाय (कविता) / सतीश राठी
।।२६।। कविताएं / सुशांत सुप्रिय
।।४०।। इंटरनेट (कविता) / शिवकुमार दुबे
।।४६।। ग़ज़लें / केवल गोस्वामी
।।४६।। ग़ज़लें / नवीन माथुर "पंचोली"
।।५०।। मुक्तक / (स्व.) चंद्रसेन "विराट"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३७।। "आमने-सामने" / कमलेश भारतीय
।।४१।। "सागर-सीपी" / डॉ. कमल किशोर गोयनका
।।४७।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।५१।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : मनसा देवी मंदिर (हरिद्वार) से गंगा का विहंगम दृश्य , २२ नवंबर २०१८. फ़ोटो : डॉ. अरविंद.

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह १४४ वां अंक २०१८ का अंतिम अंक है. "कथाबिंब" का प्रकाशन लगभग ४० वर्ष पहले, १९७९ में शुरू हुआ था. इतनी लंबी अवधि के दौरान कई बार पत्रिका को काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा. लेकिन पत्रिका का प्रकाशन ज़ारी रहा है. इस बीच हमें समय-समय पर अनेक लोगों का सहयोग मिला. हम सभी के आभारी हैं. ख़ासतौर पर रचनाकारों और पाठकों के. साथ ही हम आभारी हैं अपने विज्ञापन दाताओं के जिन्होंने आवश्यक आर्थिक संबल दिया. सभी को नये साल की शुभकामनाएं.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार" के लिए अभिमत भेजने हेतु "मत-पत्र" पृष्ठ ५६ पर छपा है. वर्ष २०१८ के सभी अंकों में, इस वर्ष भी २० कहानियां प्रकाशित हुई हैं. पाठकों से निवेदन है कि मत-पत्र के माध्यम से, पोस्ट कार्ड अथवा मेल द्वारा, अपने अभिमत का क्रम हमें भेजें. यह भी अनुरोध है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में इस आयोजन में भाग लें. "कथाबिंब" ही एक मात्र पत्रिका है जो पाठकों के सहयोग से लोकतांत्रिक तरीक़े से लेखकों को प्रति वर्ष पुरस्कृत करती है. वर्ष के सभी अंक आप "कथाबिंब" की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं. वेबसाइट के अलावा "कथाबिंब" को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है.

●

अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर : पहली कहानी *"ऐसा भी होता है..."* की लेखिका अमेरिका की निवासी सुधा ओम ढींगरा जी हैं. वे स्वयं एक प्रवासी हैं. आपका लगभग समस्त लेखन भारतीय प्रवासियों की समस्याओं से संबद्ध रहा है. मां-बाप ने दलजीत की शादी गांव के अपने जैसे ही, अमेरिका में रहने वाले एक पंजाबी परिवार में शायद इसलिए की थी कि लड़की हमेशा पैसे भेजती रहे. पर यह सिलसिला लगातार नहीं चल सकता. मां-बाप को नहीं मालूम कि प्रवासियों को कितनी मेहनत करनी पड़ती है तब जाकर डॉलर हाथ में आते हैं. ज़मींदारी की प्रथा ख़त्म होकर अरसा हो गया किंतु ग्रामीण इलाकों में अभी भी कुछ लोगों का रुतबा कायम है. अगली कहानी *"भजनिया बॉस"* (हरि प्रकाश राठी) के मुख्य पात्र कालीगढ़ के बृजेंद्र ठाकुर हैं. ठाकुर सत्तर के पार थे लेकिन आज भी उनके चेहरे पर सूर्य बसा हुआ था. ठाकुर के घर तमाम मन्नतों के बाद पोते का जन्म हुआ. कुंआ पूजन के अवसर पर एक बड़ा आयोजन रखा गया. ठाकुर साहब कृष्ण भजनियों को बुलाना चाहते थे. लेकिन किसी कारिंदे की ग़लती से राम भजनियों को भी आमंत्रण चला गया. आपसी दुश्मनी के चलते दोनों भजनिए कभी आमने-सामने नहीं पड़ते थे. अब विकट स्थिति आन पड़ी. कोई एक भी जाता तो ठाकुर नाराज़ हो जाते. ठाकुर ने स्थिति की नजाकत भांपते हुए दोनों ग्रुप के भजनियों को भजन प्रस्तुत करने को कहा. लंबे कंप्टीशन के बाद किसी एक ग्रुप की हार तो होनी ही थी! "कथाबिंब" के पाठक ओड़िया-हिंदी की लेखिका सुरभि बेहरा की कई कहानियां पढ़ चुके हैं. *"बुझी आंखों की उम्मीद"* की मंजु बहुत सुंदर है, देखने में सामान्य लगती है किंतु है मानसिक रोगी. उसे दौरे पड़ते हैं तो पति को इंज़ेक्शन देकर शांत करना पड़ता है. लेकिन धीरे-धीरे रोग बढ़ता ही जाता है और मंजु को बहला-फुसलाकर दूसरे शहर ले जाकर अस्पताल में इंज़ेक्शन देना आवश्यक हो जाता है. जो उसे बिल्कुल पसंद नहीं है. वह पति को बेहद चाहती है लेकिन ग़ुस्से में सोते हुए पति पर खौलता पानी डाल देती है. अस्पताल में पति की मौत हो जाती है लेकिन ऐसा नहीं लगता कि मंजु को कोई अफ़सोस हुआ. किंतु दरअसल ऐसा नहीं था. अगली कहानी *"झरता हुआ मौन"* (डॉ. अमृता नीरव) की अल्पना और समिधा बहुत गहरी मित्र थीं. अल्पना का भाई अमोध समिधा को चाहने लगा था. मित्रता कुछ दिनों बाद रिश्ते में बदल गयी. एलुमनी मीट के अवसर पर कई सालों बाद मिलना हुआ. अल्पना ने नोटिस किया कि समिधा चुप-चुप रहती है. समिधा का मौन गहरे तक बहुत कुछ कह गया. अंक की पांचवी और अंतिम कहानी *"कोई भी नहीं.."* (सैली बलजीत) एक तांगे वाले की कहानी है. थोड़ी देर पहले तक हांक लगाकर तांगे वाला तांगे में सवारियां भर रहा था. तांगा भर गया था और सरपट तेज़ी से चला जा रहा था. अचानक पता नहीं क्या हुआ कि तांगे वाला धड़ाम से लुढ़क गया, बीच सड़क पर. तांगे वाला मर गया था. पर सवारियां उतर-उतर कर जाने लगीं. कोई भी उसे अस्पताल ले जाने को तैयार नहीं था. कोई झंझट में क्यों पड़े! जल्दी ही जब पुलिस आयी तो वहां सवारियों मे से कोई नहीं था.

●

इस वर्ष नवंबर-दिसंबर में राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, तेलंगाना और मिजोरम : देश के पांच राज्यों में चुनाव संपन्न हुए. मध्य भारत के तीन बड़े राज्यों में कॉन्ग्रेस की जीत हुई. पिछले कई सालों में, जब-जब कहीं भी कॉन्ग्रेस या अन्य कोई पार्टी हारी तो बहुत आसानी से हार का ठीकरा "ईवीएम" पर फोड़ दिया जाता रहा है. चुनाव आयोग लाख कहे कि "ईवीएम" मशीनों से किसी प्रकार की छेड़खानी नहीं की जा सकती फिर भी उसे न्यायालय तक घसीटा गया. इसको कहते हैं, "थोथा, थोथा थू-थू, और मीठा, मीठा गप-गप." तीनों राज्यों में कॉन्ग्रेस की जीत का श्रेय राहुल गांधी

को दिया जा रहा है. यह मान भी लें तो तेलंगाना और मिजोराम में कॉन्ग्रेस को मिली हार के ज़िम्मेदार भी युवराज ही ठहरते हैं. आज भी १६ राज्यों में भाजपा की सरकार है. उत्तर-पूर्व का कोई भी राज्य नहीं है जहां आज कॉन्ग्रेस की सरकार हो. यदि हम इसी वर्ष गुजरात, कर्नाटक और मध्य प्रदेश में हुए चुनावों और वहां के परिणामों की तुलना करें तो काफ़ी कुछ समानता पायेंगे. मत-गणना के दिन, शुरू से अंत तक यह नहीं मालूम पड़ रहा था कि ऊंट किस करवट बैठेगा. कभी कॉन्ग्रेस आगे तो कभी भाजपा – गलाकाट स्पर्धा! गुजरात में भाजपा को मुश्किल से बहुमत मिला. कर्नाटक में मत-गणना के ख़त्म होने तक लग रहा था कि भाजपा को यहां आसानी से बहुमत मिलेगा किंतु पहले की ४४ सीटों से बढ़कर १०४ सीटें मिलीं जो संख्या बहुमत से मात्र ८-९ कम थी. अंततः सांठ-गांठ करके कॉन्ग्रेस और जनता दल (एस) ने मिलकर सरकार बनायी और इसे विपक्ष की बहुत बड़ी जीत करार किया गया. मत-गणना के समय कुछ ऐसा ही सीन मध्य प्रदेश में भी दिखाई दिया. देर रात तक कुछ समझ नहीं आ रहा था कि बहुमत कॉन्ग्रेस को मिलेगा या भाजपा को. आख़िर में भाजपा को कुछ सीटें कम मिलीं और १५ साल बाद भाजपा सत्ता से बाहर हो गयी. कितनी ही सीटों का हार-जीत का अंतर बहुत कम था. तीनों राज्यों में भाजपा की हार का मुख्य कारण "इनकम्बेंसी" समझना चाहिए, न कि नोटबंदी, ज़ीएसटी या राफ़ेल. क्योंकि ये सारे मुद्दे गुजरात चुनाव के समय भी मौजूद थे. इतने दिनों बाद, पांच राज्यों में हुए चुनावों में से तीन राज्यों में सत्ता में काबिज होने पर कॉन्ग्रेस को जश्न मनाने का पूरा हक़ है लेकिन यह समझना भूल होगी कि राहुल गांधी ने मोदी को पछाड़ दिया है और अब दिल्ली का सिंहासन दूर नहीं!

यदि उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय के राफ़ेल, सज्जन कुमार और नेशनल हेराल्ड केस के निर्णय २५-३० दिन पहले आ जाते तो चुनावों के परिणामों में उलट-फेर हो सकता था. यह समझ में नहीं आता है कि उच्चतम न्यायालय विभिन्न मुकदमों को सुनने और उन पर निर्णय लेने की प्राथमिकता किस आधार पर तय करता है. कभी तो न्यायालय रात में सुनवाई करके तुरत-फुरत निर्णय सुना देता है, लेकिन १९८४ के कत्लेआम पर फ़ैसला आने में सदियां गुज़र जाती हैं, अभी भी पूरा निर्णय नहीं आया है. सज्जन कुमार उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकते हैं. नानावती कमीशन में मुख्यमंत्री कमलनाथ का नाम भी आ चुका है. राम मंदिर जन्मस्थान की सुनवाई आगे टाल दी जाती है लेकिन सबरीमाला जैसा उतना ही संवेदनशील और आस्था के मामले को जल्दी निपटा दिया जाता है. न्यायपालिका की पूरी प्रक्रिया में शीघतिशीघ्र आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है. बड़े पैमाने पर कंप्यूटरीकरण करना, बढ़ती जनसंख्या के अनुपात के अनुरूप न्यायालयों की और बेंचों की संख्या में वृद्धि करना परम आवश्यक है. जजों की संख्या बढ़ाई जा सकती है. इस क्षेत्र में अनेक लोगों को रोज़गार मुहैया कराये जा सकते हैं. देश के तमाम जेलों में छोटे-छोटे अपराध करने वाले लाखों लोग बरसों से बंद हैं. शायद अगर सज़ा मिल गयी होती तो बहुतों की सज़ा की मियाद भी पूरी हो गयी होती! इनके मुकदमे फ़ास्ट ट्रेक कोर्ट में जल्दी निपटाने चाहिए. देश में आजकल ऐसा कोई दिन नहीं गुज़रता जब कोई आंदोलन, रास्ता रोको नहीं होता. पुलिस कोई कार्यवाही करती है तो बुरी बनती है और कुछ न करे तो भी बुरी बनती है. किसी भी बात का बहाना बना कर लोग उग्र हो जाते हैं, टायर जलाते हैं, सड़क पर खड़े वाहनों और सरकारी बिल्डिंगों और सामानों को आग लगाने लगते हैं. यह एक पैटर्न हो गया है. इस तरह की आगजनी को रोकने के लिए सख़्त क़ानून बनाने की आवश्यकता है. हर छोटी से छोटी पुलिस चौकी पर विडियोग्राफ़र की व्यवस्था हो ताकि ऐसे आंदोलन करने वालों की पहचान शीघ्र की जा सके.

अभी संपन्न हुए चुनावों के दौरान किसानों के कर्ज माफ़ी का मुद्दा बहुत जोर शोर से उठाया गया और कॉन्ग्रेस ने अपना वायदा कुछ दिनों में ही पूरा भी कर दिया. भाजपा शासित कुछ राज्यों में पहले से ही किसानों के कर्ज माफ़ कर दिये गये हैं, लेकिन जिन राज्यों में अब तक नहीं किये हैं वहां भी करना पड़ेगा. किंतु क्या स्थिति में बहुत फ़र्क पड़ेगा? बैंकों से लिया ऋण चुक जायेगा लेकिन स्थानीय साहूकारों से, पठानी दर पर लिया कर्ज फिर भी शेष रहेगा. जिसको न चुकाने पर ही किसान आत्महत्या करता है. अगले साल फिर वही स्थिति होगी. कर्ज माफ़ी कोई हल नहीं है. आवश्यकता है इस वार्षिक "साइकिल" को किसी तरह तोड़ने की. आख़िर बैंकों में यह सारा पैसा टैक्स देने वालों का ही तो है.

इन दिनों संसद का शीतकालीन सत्र ज़ारी है. रोज ही कार्यवाही स्थगित हो रही है. पिछले दो-तीन सालों से यही सिलसिला ज़ारी है. किसी न किसी मुद्दे पर विपक्ष संसद को चलने नहीं देता. समय और धन का अनावश्यक अपव्यय होता है. विपक्ष और सरकार को मिलकर कोई दीर्घकालिक समाधान खोजना चाहिए.

●

विदेशों की तर्ज पर अपने देश में भी "मी-टू" आंदोलन काफ़ी जोरों से उठा. बहुत-सी नामी-गिरामी हस्तियां इसकी चपेट में आ गयीं. मंत्री एम. जे. अकबर के ऊपर भी आरोप लगे. फ़िल्म-जगत के नाना पाटेकर, आलोक नाथ व अन्य कुछ लोगों पर भी मुकदमे चल रहे हैं. सभी की साख दांव पर है. देखना है कि कौन बेदाग़ छूटेगा!

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' के अप्रैल-सितंबर अंक को बड़े मनोयोग के साथ पढ़ा. पिछले अंकों को भी पढ़ता रहा हूं लेकिन प्रतिक्रियाएं न दे सका था. सबसे पहले तो 'कुछ कही, कुछ अनकही' के लिए, ख़ास कर अंतिम पंक्तियों के लिए, आपका अभिनंदन, जहां आपने लिखा है, ''समलैंगिक संबंधों पर क़ानूनी मुहर लग गयी. अगले क़दम में अपने पालतू पशुओं से संबंध बनाने की मांग भी उठायी जा सकती है.'' आपने जिस भयावह कल्पना का ज़िक्र किया है, वह बहुत संभव हो सकती है. यह एक संयोग है कि मैंने भी अपने एक लेख में इसी आशंका पर चिंता व्यक्त की थी. क्या हम आधुनिक होने के नाम पर बर्बर और जंगली होने की दिशा में बढ़ते जा रहे हैं? हमारा जो स्वस्थ-सुंदर-सामाजिक ढांचा बना हुआ है, क्या हम उससे अघा गये हैं? अब जो कुछ भी सुंदर बचा हुआ है, उसे नष्ट करने के लिए हम क्यों आमादा हो रहे हैं? यह समय हमें हैरान कर रहा है. आपकी टिप्पणी भले ही बहुत संक्षिप्त थी लेकिन समझदार के लिए इशारा ही काफ़ी होता है.

पत्रिका की अनेक रचनाएं मैंने देखीं. कविताएं भी देखीं, लघुकथाएं भी देखीं. अन्य रचनाओं को भी देखा, पढ़ा, मगर सबसे अच्छा मुझे तब लगा, जब मैंने आपके अमेरिका प्रवास की कुछ झलकियां देखीं. यह देखकर सुखद लगा कि आप भी कभी-कभी घूम-फिर लेते हैं, पूरी लगन के साथ वर्षों से पत्रिका निकालकर आपने एक समर्पित और साधक संपादक के धर्म का निर्वाह किया है. उसके लिए आपका शत-शत अभिनंदन. भगवान आप दोनों को स्वस्थ, सानंद और समर्पित रखे, यही मेरी हार्दिक शुभकामना है.

– गिरीश पंकज

कृष्ण कुटीर, सेक्टर-३, एचआईजी-२, घर नंबर-२, दीनदयाल उपाध्याय नगर,
रायपुर-४९२०१०. मो.: ९४२५२१२७२०

▸▸ एक लंबे इंतज़ार के बाद कथाबिंब का अप्रैल सितंबर '१८ का अंक मिला. ''कुछ कही कुछ अनकही'' में समसामयिक परिस्थितियों पर अरविंद जी के विचार बेहद प्रासंगिक व सटीक लगे.

सभी कहानियां मनमोहक लगी. 'काली माई का थान' कहानी वर्तमान परिस्थितियों में आज के गांव के माहौल व पुरातन प्रथा को उजागर करती है. वहीं 'बनते-मिटते रिश्ते' कहानी में गांव के प्रति दयाराम की भावना. जब उस पर संकट आता है तो गांव वालों का एक होकर उसके लिए आगे आना प्रेम की वास्तविकता का द्योतक है. तो कहानी 'गुरू दक्षिणा' में ट्रक चालक के जीवन के कुछ पहलुओं के बारे में जानकारी मिली. तो वहीं यह भी जाना कि मानव मन कितना भी कठोर या विषम परिस्थिति में क्यों ना हो, अगर इंसानियत और मेहनत आपके साथ है तो कोई भी कार्य मुश्किल नहीं. कहानी 'सफ़ेद शाल' रिश्तों के ताने-बाने व मां-बाप के स्नेह से बंधे-जीवन सूत्र की परिचायक लगी. जो समय के बीत जाने के बाद भी भुलाये नहीं भूलती. कहानी 'रुतबा' और 'टापू' भी जीवंत कथाएं लगीं. डॉक्टर सुधाकर मिश्र से त्रिपाठी जी द्वारा लिया गया साक्षात्कार अतीत व वर्तमान से जुड़े उनके अनुभव बेहद रोचक व प्रेरणास्पद लगे. अरविंद जी व मंजुश्री के साहित्य सम्मेलन की तस्वीरें भी लाजवाब लगीं. 'कथाबिंब' का यह इंद्रधनुषी अंक बेहद अच्छा लगा.

- मनीषा शर्मा

तिवारी क्लॉथ हॉउस, गणेश चौक, पोस्ट-नोहर,
जिला- हनुमानगढ़, राजस्थान-३३५५२३

▸▸ 'कथाबिंब' का नया अंक मिला, पत्रिका और भी संवर-निखर गयी है. आपकी मेहनत का फल है. सभी रचनाएं अच्छी हैं. हिंदी का विकास हो रहा है और देश का भी. किंतु मुझे लगता है देश में इंसानियत का स्तर गिरता जा रहा है इसके लिए भी हमें प्रयास करना चाहिए.

यह बात मैं यूं ही नहीं बल्कि जिस तरह की घटनाएं आज आये दिन देश में घटित हो रही हैं उनको आधार बना कर कह रहा हूं. अभी हाल ही में जो गुजरात में ठाकोर सेना ने उत्पात मचाया वो निंदनीय है. ठीक है किसी ने अपराध किया उसे दंड मिलना चाहिए किंतु इस बहाने से उत्पात मचाना, तोड़–फोड़ करना, निर्दोष लोगों को धमकाना ग़लत है. यदि ऐसा महाराष्ट्र में हुआ होता तो यहां भी उत्तर भारतीयों के साथ 'मनसे' यही करती और यदि अपराध किसी मुस्लिम ने किया होता तो फिर तो दंगा ही हो सकता था. मेरा यह सब कहने का आशय यही है कि देश में कुछ ऐसे ग्रुप बन गये हैं जिन्हें गुंडागर्दी, तोड़-फोड़, आगजनी आदि का बहाना चाहिए जो कभी भी क़ानून हाथ में लेना अपना अधिकार समझते हैं. कभी गाय के शक में किसी इंसान को पीट कर मार दिया जाता है. लोग इतने संवेदनहीन क्यों हैं? लोगों में इतना ग़ुस्सा क्यों हैं? असहनशीलता क्यों है? यह सब देख कर मन दुखी होता जाता है. क्यों न हम सब मिल कर इस तरह के संघठनों पर प्रतिबंध लगाने की मांग करें. अपराधियों को सज़ा देने के लिए क़ानून को और भी मज़बूत करें. यदि जनता स्वयं ही फ़ैसला करने लगे और वो भी हिंसात्मक तरीक़े से तो फिर तो देश में जंगल राज ही हो जायेगा. किसी को भी क़ानून का दुरुपयोग न करने दिया जाये. जिससे कि देश में अमन, शांति, प्रेम, भाईचारा, सद्भावना, परस्पर सहिष्णुता, सर्व धर्म समभाव बना रहे. इंसानियत का विकास भी तो हो वरना केवल भौतिक विकास का क्या अर्थ है जब तक मानसिक उन्नति न हो.

– हम्माद अहमद ख़ान

सी-२६, सारनाथ, अणुशक्तिनगर,
मुंबई- ४०००९४

'कथाबिंब' का अप्रैल-सितंबर '१८ अंक काफ़ी इंतज़ार के बाद मिला. कथा-प्रधान यह पत्रिका अपनी स्तरीयता के लिए तो चर्चित है ही, आपकी काव्य-दृष्टि भी इसमें परिलक्षित होती है. जहां एक से बढ़कर एक कहानियां इसमें होती हैं वहीं कुछ काव्य रचनाएं भी आपकी संपादकीय दृष्टि संपन्नता को भी व्यंजित कर जाती हैं.

अंक की चयनित रचनाएं स्तरीय ही नहीं दस्तावेजी भी हैं जो सुदीर्घ साहित्य साधना को दर्शाती हैं. आवरण पृष्ठ पर दी गयी तस्वीरों से हम लोगों ने टोरंटो (कैनाडा), अमेरिका आदि के दर्शन कर लिये. आप लोगों को विदेशी धरती पर सम्मानित होते देखने का सुख मिला. बधाई.

-रामबहादुर चौधरी 'चंदन'

फुलकिया, बरियारपुर, मुंगेर-८११२११.
मो. ९२०४६३६५१०

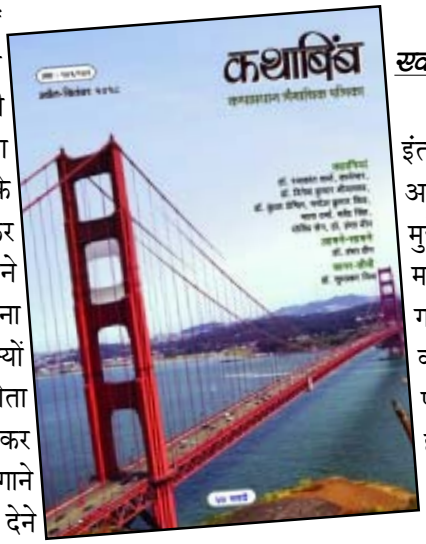

<u>एक बिंदास प्रतिक्रिया...</u>

▶▶ 'कथाबिंब' के १४२वें का इंतज़ार खिंच-सा रहा था. कारण? अपनी आदत! मुद्दा मिलना चाहिए जी, बस! मुद्दे तो चांदी की थाली में प्रधान संपादक महोदय ने ख़ुद ही परोस दिये और निकल गये विदेश यात्रा पर संपादिका सहित! वहां से लौटे तो फिर चर्चा, ''लंबे टूर पर हैं जी वे आजकल! सितंबर तो होता ही है, हिंदीवालों का. कहां हैं अब--भोपाल में! फिर...?'' पर अरविंद जी, आपने सबकी नब्ज़ टटोल रखी थी. आते ही अनकही को कही और बहुत कुछ कह कर भी अनकही-सा कर दिया. साफ़-साफ़ सारा ब्यौरा दे दिया, विद एविडेंस! छायाचित्रों के माध्यम से!! सोचते रहो, सुलझाते रहो! हम मुद्दे परोसते हैं, कथा के बिंब के रूप में! और फिर विवेचना-आलोचना, क्रिया-प्रतिक्रिया सब आप पाठकों पर! हर कथा की विषयवस्तु हाज़िर, 'कुछ कही, कुछ अनकही' के जरिए पर पाठक का ईमानदार पठन और उसकी प्रतिक्रिया ही आंकेगी स्वार्थ-रहित शुद्ध सांस्कृतिक, सितंबर इतर, हिंदी प्रेम! इसी स्तंभ की जो एक और बात मुझे बहुत भाती है, वह है तमाम समसामयिक विषयों पर अरविंद जी की अपनी सौ टका ख़ालिस सोच जिसे वे बेबाक़ी के साथ पाठकों से साझा करते हैं, बिना किसी लाग लपेट के. और यही होना भी चाहिए. पाठक अनेक हैं. वे किसी भी गुट, दल,

समुदाय और उससे बंधी सोच के हिमायती हो सकते हैं. पर उनकी इस व्यक्तिगत निधि को दरकिनार कर अपनी पत्रिका के माध्यम से अपनी सकारात्मक बात रखने की कला; स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान की जांबाज व जुनून भरी पत्रकारिता की याद ताज़ा कर देती है. इस एहसास के साथ कि कथाबिंब का प्रधान मुद्दा तो कथा ही है जिसका अक्स अपनी बात कहने की हर विधा में दिखाई देता है. 'मैं किसी गुटबाजी में विश्वास नहीं रखती', यह ईश्वर को हाज़िर-नाज़िर मान कर सरेआम कह सकती हूं. अब रही 'युवराज' की बात; सो वह तो हर किसी को गुदगुदा जाती है! अब हंगामा है क्यों बरपा, ३७७ जो संशोधित हुआ? सोचिए, आज के परिप्रेक्ष्य में! कब कहां माइनॉरिटी मेज़ॉरिटी में बदल जाये और मेज़ॉरिटी, माइनॉरिटी में तब्दील हो जाये; कुछ कहा नहीं जा सकता.

एक और बात जरा स्पष्ट हो जाये, नवसिखिया हूं न मैं; इसलिए. क्या यह सच है कि पहले नंबर पर छपी रचना पत्रिका की 'बेस्टम बेस्ट' होती है? आपके 'लेटर-बॉक्स' से यह संदेह जगा है. इस अंक की पहली रचना, डॉक्टर रमाकांत शर्मा की 'नदी और मैं' की आपसी तुलना में काफ़ी अनुच्छेद गटकने के बाद कथा का रहस्य खुलना शुरू हुआ और अपने प्रवाह में बहा कर ले गया. कई बार तो कहानी में छिपे सामाजिक और व्यवहारिक दर्शन ने जकड़ लिया. 'नदी को भी क्या ससुराल जाना होता है?...फिर क्यों... उसके किनारों को सीमित कर दिया जाता है.' 'शांत बहती नदी कभी-कभी उबलने लगती है, फट पड़ती है।---हमेशा शांत रहनेवाली मैं बिफर पड़ी थी...' डॉ. रामबहादुर चौधरी 'चंदन' ने 'अनुप्रिया' को ही ध्यान में रख कर एक बहुत सुंदर शेर लिखा है:

'ठहर जाती हमारी ज़िंदगी अंधी गुफाओं में,
अगर आकाश छूने की हमें हसरत नहीं होती.'

दूसरी कहानी 'जुलूस' भारत के उस विशाल पर बिकाऊ समाज पर प्रहार करती है जिसका पेशा है जुलूस का हुजूम बनना. फिर वह चाहे बालक हो या वृद्धा. जुलूस ख़त्म तो, तू कौन मैं कौन! बहुत ही शानदार अंत दिया है कामेश्वर जी ने इस कहानी को '...और बूढ़ी दुआसा... कौन दुआसा?' याद रहे, 'जनतंत्र का वह एक जन है' में धर्मपाल महेंद्र जैन ने भी इसी मुद्दे पर क़लम चलायी है-

'वह खड़ा जो एक नारा दे रहा है,
एक नन्हा ख़्वाब लेकर जी रहा है
राजनेता देश जानें,
वह दिहाड़ी कर रहा है.'

डॉ. दिनेशकुमार श्रीवास्तव के गांव में, जो बकुलाही से साफ़ दिखाई पड़ता है, 'काली माई का थान' है. बहुत दिलचस्प है वहां पहुंचने का रास्ता. आपको जाना है? जादू-टोना, बलि, ओझा, ओझा की पुड़िया, सब कुछ ठेठ देहाती; तो बोली भी वैसी! रोचक! ! 'बनते-मिटते रिश्ते' तो जीवन का फलसफ़ा सिखा गये. दयाराम की दयनीयता और विनम्रता मन को झकझोर गयी. वाह, क्या चरित्र चित्रण किया है डॉ. कुंवर प्रेमिल ने! '...तुम ग्रेट हो दया... तुम्हें लूट लेने का जी करता है.' रक्तदान की अनूठी मिसाल यह कहानी; आंखें नम कर जाती है, कई बार!

किसी रोचक कहानी के सभी मापदंडों को पूरा करती, मनोज कुमार 'शिव' की 'गुरू दक्षिणा' सुदृढ़ पारिवारिक, सामाजिक नैतिक मूल्यों का ज्वलंत उदाहरण है. ठीक कमल की तरह! वैसे कमल के चारों तरफ़ कीचड़ भी तो हमीं का करा-धरा है!! हैरत है, ऐसी कहानियां बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में क्यों नहीं होतीं? इसी अंक से मिल जायेंगी कई. क्या कहा जी...? बहुत झोल है...! ख़ैर!! अब एक संस्मरण, सॉरी सॉरी, कथाबिंब! माला वर्मा की 'सफ़ेद शॉल' यानी सीने में बसी मायके की याद की गर्माहट! वह मायका, जो सिर्फ़ अम्मा और बाबूजी से ही होता है!! अनेकता में एकता और कभी खंडता. हर एक की अपनी डफली और अपना ही राग तो कैसे ना पसरे दुराव की आग! दोषी कौन और बचें कैसे उसके 'दांव' से? महेंद्र सिंह की यही सामंजस्य भरी सोच बचा सकती है भारत वर्ना...!! गोविंद सेन की 'टापू' यानी उदासी, मायूसी, अकेलापन. आसपास सब कुछ सुंदर और रमणीय होते हुए भी कटे-से रहना. पत्रिका की अंतिम कहानी डॉ. हंसा दीप की 'रुतबा', यानि धौंस जमाने की कला; हर तरह की तिकड़मबाजी के बल पर!

(शेष देखें पृष्ठ ५४ पर...)

ऐसा भी होता है...

सुधा ओम ढींगरा

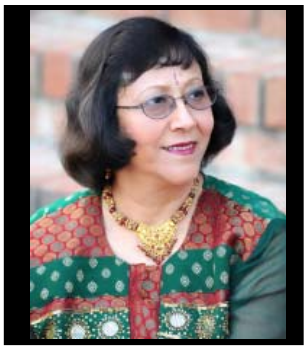

राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति द्वारा प्रवासी हिंदी सेवा सम्मान द्वारा सम्मानित सुधा ओम ढींगरा का 'नक्काशीदार केबिनेट' (उपन्यास), दस प्रतिनिधि कहानियां, सच कुछ और था, कमरा नंबर १०३, कौन-सी ज़मीन अपनी, वसूली, प्रतिनिधि कहानियां (कहानी संग्रह), सरकती परछाइयां, धूप से रूठी चांदनी, तलाश पहचान की, सफ़र यादों का (कविता संग्रह), वैश्विक रचनाकारः कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं (साक्षात्कार संग्रह-दो भागों में), इतर (प्रवासी महिला कथाकारों की कहानियां), सार्थक व्यंग्य का यात्रीः प्रेम जनमेजय (संपादन सहयोग), मेरा दावा है (अमेरिकी शब्द-शिल्पियों का काव्य संकलन), गवेषणा (संपादन सहयोग), प्रवासी साहित्यः जोहान्सवर्ग के आगे (संपादन सहयोग) संपादित पुस्तकें, परिक्रमा (पंजाबी से अनुदित हिंदी उपन्यास), विमर्श-नक्काशीदार केबिनेट-पंकज सुबीर, शोध दृष्टि-सुधा ओम ढींगरा का साहित्य-बलबीर सिंह, प्रकाश चंद्र बैरवा, सुधा ओम ढींगरा : रचनात्मकता की दिशाएं-वंदना गुप्ता (आलोचना की पुस्तकें), डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में अभिव्यक्त और निहित समस्याएं - रेशू पांडेय और निधि भडाना, प्रवासी भारतीयों की समस्याएं एवं संवेदनाएं (सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के संदर्भ में) प्रसीता पी, सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में प्रवासी जीवन-शहनाज (शोध पुस्तकें), और ओह कोई होर सी (पंजाबी में अनुदित), कई कहानियां अंग्रेज़ी में अनुदित, ६० संग्रहों में कविताएं, कहानियां, आलेख प्रकाशित, मां ने कहा था (काव्य सी.डी.) है. नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए के यूएनसी चैपल, हिल और एनसी स्टेट विश्वविद्यालयों में कविताएं और कहानियां पढ़ायी जाती हैं. भारत के अनेकों पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, कविताएं और आलेख प्रकाशित.

: संप्रति :

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक विभोम-स्वर त्रैमासिक पत्रिका, संरक्षक एवं सलाहकार संपादक शिवना साहित्यिकी त्रैमासिक पत्रिका. ढींगरा फाउंडेशन (यूएसए) की उपाध्यक्ष और सचिव.

'आदरणीय बाऊ जी एवं बीजी,

सादर प्रणाम!

बाऊ जी का लिखा मार्च १९९२ का पत्र फरवरी १९९३ में मुझे मिला. यहां का पता लिखते समय शहर के ज़िप कोड का एक नंबर बाऊ जी से ग़लत लिखा गया. पत्र घूमते-घामते ग्यारह महिने बाद मुझे मिला. चिट्ठी को पढ़ने के बाद पिछले महिनों के घटनाक्रम को समझ पायी. पिछले ग्यारह महिनों में घर से आने वाले हर पत्र को पढ़कर सोचती रही, मैंने क्या ग़लत कर दिया; जो आपके पास से आने वाला हर पत्र चाहे वह वीर जी का हो, आपका हो या चाचा-चाची का, या किसी और रिश्तेदार का, दबे-घुटे, पर्दे में ढके-छिपे मुझे कटघरे में खड़ा कर लिखा जाता रहा. मुझे इस बात का पता ही नहीं था कि कोई पत्र आपने मुझे लिखा है, जिसका उत्तर आप शीघ्र ही चाहते थे और मैंने उत्तर नहीं दिया. उसके परिणाम स्वरूप आपके प्रेम भरे पत्र मुझे मिल रहे थे.

मुझे इस देश में आये दस साल हुए हैं. इन दस सालों में कोई दिन ऐसा नहीं गया, जिस दिन मैंने आप लोगों को याद नहीं किया. पर मार्च १९९२ को लिखी बाऊ जी की चिट्ठी, जो मुझे अब मिली; उस पत्र को पढ़कर पहली बार महसूस हुआ, आप सबके दिल में मेरा सिर्फ़ इतना ही स्थान है कि मैं आपकी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए बनी हूं. आप लोगों के जीवन और दिलों में मेरा और कोई महत्त्व नहीं, अस्तित्व नहीं. लड़कियां तो मेरे अलावा आपकी तीन और भी हैं, किस-किस से प्यार करें आप.

कई दिनों के ऊहापोह के बाद इस निर्णय पर पहुंची हूं कि अगर आज मैंने सच नहीं बोला, सही और स्पष्ट नहीं कहा तो अपने आपको कभी माफ़ नहीं कर पाऊंगी. पहली बार महसूस हुआ, मेरी सोच कितनी ग़लत रही इतने साल. शायद लड़कियां ऐसी ही होती हैं, भावुक, संवेदना से ओत-प्रोत.

सच से भागती, हर दिल में प्यार तलाशती. स्वार्थ, बेरुखी को भी प्यार समझ कर सीने से लगा कर रात-रात भर आंसू बहाती भावनात्मक बेवकूफ़.

आपके साथ पिंड (गांव) में रहते हुए अक्सर महसूस करती थी. हमारे घर में कुड़ियां आंगन के फूल नहीं बस एवईं पैदा हुई खरपतवार हैं. सारा प्यार, दुलार और सारी सुख-सुविधाएं तो वड्डे वीर जी और छोटे वीरे के लिए हैं. चाचा-चाची के अपना कोई बच्चा नहीं, दोनों वीर उनकी आंखों के भी तारे हैं. अब पिछले ग्यारह महीने की चिट्ठियों ने तो मेरे एहसास को और पुख़्ता कर दिया. आपके दिल में कुड़ियों का कोई महत्त्व है ही नहीं. आपके लिए वे कठपुतलियां हैं जैसे चाहो नचा लो. आपके घर में आपकी मर्ज़ी मुताबिक जियें और जब शादी हो जाये तो भी उनकी ज़िंदगी में आपका पूरा दख़ल और पूरा कंट्रोल रहे. तभी तो बाक़ी बहनों की अभी तक शादी नहीं हुई. पिंड में ये बातें छिपी थोड़े रहती हैं.

मुझे दोनों वीरों से कोई ईर्ष्या नहीं बस बीजी के भेदभाव से ऐतराज़ है और निराशा भी है; जिन्होंने हर बच्चे को नौ महीने अपने पेट में पाल कर, एक जैसा कष्ट सहा. पर बाहर आते ही शिशु लड़का-लड़की बन गया और भेदभाव का सिलसिला उसी क्षण से शुरू हो गया, जब बच्चे की आंख ही खुली.

बीजी, जैसे आप वीरों को सीने से लगाती हैं, कभी आपने अपनी धीयों (बेटियों) को भी सीने से लगाया. क्यों नहीं लगाया? हम तो आपकी ही हैं, आपकी जात की. बाऊ जी और चाचा जी ऐसा करें तो मैं मान सकती हूं, वे पुरुष हैं, वीर उनकी जात के हैं, पुरुष प्रवृत्ति ऐसी ही होती है. अफ़सोस तो इसी बात का है, स्त्री ही अपनी जात के साथ गद्दारी करती है. मैं जानती हूं यह पढ़कर आप सब अब मुझे बुरा-भला कहेंगे. दलजीत के शादी के बाद पर निकल आये हैं. अमरीका जाकर बदल गयी है, बेशर्म, बेहया, बदतमीज़ हो गयी है, मर्यादा भूल गयी है, बीजी-बाऊजी से कैसे बात करनी है, तमीज़ गंवा चुकी है.

नहीं जी, बात यह नहीं है. पिछले ग्यारह महीनों में आप मुझे इससे भी बड़े-बड़े पत्थर शब्दों में लपेट-लपेट कर मार चुके हैं. आप सबने यह सोचा कि मार्च १९९२ का लिखा पत्र जो अब फरवरी १९९३ को मिला है, मैंने नज़रअंदाज़ कर दिया. कब तक आप सबकी बातें सुनती रहूं और अब घर-बार वाली बन कर भी अपनी बात नहीं कह पाऊंगी तो अन्याय होगा, कुलदीप और कुलदीप के परिवार के साथ.

आपकी बेटी हूं, पूरा अधिकार है आपका. पर यह कैसा हक़ कि जिससे मेरी शादी हुई, जिस परिवार में मेरी शादी हुई, उनका मेरे पर कोई हक़ ही नहीं है. सिर्फ़ आपका है. आपने तो मेरी शादी कर दी है. आपके घर में मैं पराई थी. पराई अपने घर में आ गयी है. अब उस पराई पर यह कैसा हक़.

बीजी कुलदीप जी एक अच्छे इंसान हैं. वरना आज मेरी गृहस्थी टूट चुकी होती. आप लोगों ने मेरे यहां आने के एक महीने के भीतर ही छोटे वीरे के दाख़िले के लिए फ़ीस के साथ दस और चीज़ें लिखकर मोटी रक़म मांग ली. किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की, मैं कैसी हूं? मेरा जीवन यहां कैसा है? कुलदीप कैसा है? उसके परिवार वाले कैसे हैं? आपने तो दलजीत ब्याह दी, आप तो गंगा नहा लिये, वह जिये या मरे, आपकी मांगें पूरी करती रहे. कहां से पैसे भेजूं? क्या आपने मुझे पढ़ाया था कि मैं यहां आते ही कमाने लग जाती. मैं जितना भी पढ़ी हूं, आप सबसे लड़कर, अपने दम पर, सारे घर का काम करके, जो समय बचता, उसमें पढ़ी हूं. आप लोग तो लड़कियों को पढ़ाने के हक़ में नहीं थे. आप तो वीरों को ही पढ़ाना चाहते थे. यह बात अलग है कि वीर पढ़े नहीं और आपकी कुड़ियां सभी पढ़ने में तेज़ हैं.

आपके पत्रों से ही मुझे पता चला, आपने सोच-समझ कर मेरी शादी यहां की. कुलदीप का परिवार बहुत पहले यहां आ गया था. आप सबने सोचा बहुत पैसा है सेठी परिवार के पास, बस दलजीत जाते ही उनके घर में जो डॉलर उगते हैं, उन्हें उखाड़-उखाड़ कर भेजती रहेगी.

बाऊजी, जिसने यह रिश्ता करवाया, उसने आपके साथ धोखा किया है. यहां डॉलर उगते नहीं, कमाने पड़ते हैं, कड़ी मेहनत से. सेठी परिवार एक मेहनती परिवार है. उनके पास काला धन नहीं. एक-एक डॉलर पर टैक्स दिया हुआ है. अमीर-ग़रीब यहां सभी मेहनत करते हैं. अमीरों के पास भी ड्राइवर, नौकर-चाकर नहीं होते सभी अपना काम ख़ुद करते हैं. अमीर-ग़रीब का कोई भेद-भाव नहीं है यहां.

कुलदीप के बाऊजी और कुलदीप दोनों यहां टैक्सी चलाते हैं. कुलदीप के बीजी एक स्टोर में काम करते हैं,

जैसे अब मैं करने लगी हूं. कुलदीप की दो बहनें और दो भाई पढ़ रहे हैं. हां एक बात की ख़ुशी है मुझे और बड़े गर्व से कहूंगी, जो पिछले दस सालों से देख रही हूं, बड़ा संतोष वाला और सुलझा हुआ परिवार है. इस परिवार ने मुझे एहसास दिलवाया कि मैं सिर्फ़ एक स्त्री नहीं, इंसान भी हूं और मुझे भी सोचने का, कहने का हक़ है; जो आपके घर में मुझे कभी नहीं मिला. कुलदीप के बीजी मेरी सास कभी नहीं बनीं, एक अच्छी दोस्त की तरह मेरे साथ रहती हैं. शादी के एक महीने बाद जब आपने पैसे भेजने का लिखा था, मैं बहुत चिंतित हो गयी थी. कहां से पैसे लूं? किसको कहूं पैसे देने के लिए? परिवार को अभी मैं समझी भी नहीं थी. कुलदीप को भी पूरी तरह समझ नहीं पायी थी. पर आप में से किसी ने यह नहीं सोचा कि कुड़ी की नयी-नयी शादी हुई है, वह अभी अमरीका गयी ही है, कहां से हमारी मांग पूरी करेगी.

मैं जानती हूं, आप कहेंगे, वह चिट्ठी तो तुम्हारे छोटे वीर ने लिखी थी. अगर नहीं भेज सकती थी तो मत भेजती पैसे उसे. हमें अब क्यों कह रही है? बहन-भाई की बातों में हम नहीं बोलने वाले. वीर ने बताया तो होगा, आप उसे रोक सकते थे, समझा सकते थे. पर नहीं, आपने मेरी शादी अमरीका में इसलिए ही की है, ताकि सबका ख़्याल रखूं. यह अब स्पष्ट हो चुका है, उन पत्रों से जो आप लोगों की तरफ़ से ही लिखे गये हैं. हर पत्र में कुछ ऐसा ही लिखा गया है — 'फलां की बेटी ने बहन-भाइयों का जीवन संवार दिया. फलां की बेटी ने मां-बाप को घर बनवा दिया. फलां की बेटी ने ज़मीनें ख़रीद दीं.' रब्ब दी सोंह, आप सब 'फलां' के लिए, उन सभी लड़कियों के लिए सही कह रहे हैं, पर फलां-फलां की लड़कियों के ससुराल या परिवार नहीं होंगे, या उन पर कोई और ज़िम्मेदारी नहीं होगी. आपके जमाई जी और बेटी का बहुत बड़ा परिवार है. सारे ताए-चाचे-बुआ यहीं रहते हैं. हम पर परिवार की भी ज़िम्मेदारी है. आप की बेटी अकेली नहीं, जो कमाया सब अपने मायके भेजती रहूं. दस साल भेजा ही है. आप सबसे एक सवाल पूछना चाह रही हूं, बेटों के होते अगर बेटियां इतना करती हैं तो फिर उन्हें कमतर क्यों समझा जाता है?

एक महीना ही हुआ था मुझे इस देश में आये, वीरे की इच्छा पूरी करनी चाहती थी, सोचा था छोटा है, शादी के बाद पहली बार उसने मुझ से कुछ मांगा है. मैं बहुत

परेशान हो गयी थी. कुलदीप के बीजी मेरी परेशानी को ताड़ गये थे, उन्होंने मुझे पूछा और मैंने वीरे की चिट्ठी दिखा दी. वे पैसे उन्होंने ही मुझे दिये थे. दूसरी बार मैंने कुलदीप से लिये. तीसरी बार फिर बीजी से. तब तक मुझे पता चल गया, घर में कोई बात किसी से छुपी नहीं रहती.

कुलदीप और बीजी ने मुझे अपनी अंग्रेज़ी सुधारने की सलाह दी. मुझे अंग्रेज़ी बोलनी नहीं आती थी. मैं अपनी इस कमी को दूर करने के लिए एक स्कूल में जाने लगी; जहां अंग्रेज़ी दूसरी भाषा के रूप में सिखायी जाती है. क्रैश कोर्सेज़ होते हैं, अंग्रेज़ी भाषा में बोलचाल बहुत अच्छी तरह से सिखा दी जाती है, ताकि अमेरिका में रहना आसान हो जाये. बस यह कोर्स पूरा करते ही मुझे बीजी ने एक ग्रॉसरी स्टोर में लगवा दिया, जहां कुछ महीने काम सीखने के बाद मैं वॉलमार्ट के चैक आउट कॉउंटर पर आ गयी. तब से यहीं पर हूं. अब मैं यहां की इंचार्ज़ बन गयी हूं. मेहनती तो मैं शुरू से ही बहुत थी, और चीज़ें सीखने में भी तेज़ थी, यह बात अलग है कि वहां मुझे घर के कामों के अलावा कुछ और करने या सीखने नहीं दिया जाता था. आपका कहना था, हमें कौन सा बेटियों से नौकरी करवानी है. देखिए, अब मैं यहां नौकरी कर रही हूं पिछले दस सालों से. तभी तो आपकी तरफ़ से आयी हर मांग को पूरा कर पा रही हूं.

नौकरी दिलवाते समय बीजी ने कहा था, 'बेटी, नौकरी से जो कुछ मिलेगा वह तुम्हारा होगा. हमें तुम्हारा

एक पैसा नहीं चाहिए, अब तुम इसे अपने पर ख़र्च करो या अपने पेके (मायके) भेजो. कोई नहीं पूछेगा. अब तुम्हें मुझ से या कुलदीप से लेने की ज़रूरत नहीं.' कितना आत्मविश्वास भरा बीजी ने मेरे में.

ग्यारह महीनों से जो पत्र मुझे आ रहे थे, उन्हें पढ़कर मैं बहुत उदास रहने लगी थी. तीन छोटे बच्चे, नौकरी, घर-गृहस्थी के काम, फिर आपके शिकवे-शिकायतों से भरे पत्र. यह नहीं जान पायी थी कि मेरा कसूर क्या है? आपकी अपेक्षाओं पर लगातार खरा उतर रही थी. फिर कहां चूक हो गयी; आप सब लोग नाराज़गी भरे पत्र लिखने लगे. ग्यारह महीने बाद जो पत्र मुझे मिला, उससे सारी हक़ीकत स्पष्ट हुई.

मेरी ही भूल थी, कोई किसी की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर सकता; क्योंकि वे तो फैलती ही रहती हैं. कहां तक आप उन्हें संतुष्ट करेंगे. जब इच्छाओं का गजधर अपने फन फैलाने शुरू कर देता है तो उसकी पूर्ति होती रहे तो ठीक, नहीं तो वह ज़हर उगलने लगता है, मेरे साथ भी यही हुआ. पिछले ग्यारह महीनों से ज़हर ही पीती रही हूं.

कुलदीप के बीजी सही थे, गुड़िया होने के बाद उन्होंने एक दिन कहा था — 'दलजीत, अब तेरा अपना परिवार हो गया है. इस ओर भी ध्यान दे. बड़ी जल्दी ख़र्चे बढ़ जायेंगे. कुलदीप अकेला कितना संभालेगा. उसके अपने भाई-बहन भी हैं. मायके का कब तक पेट भरती रहेगी. जिस दिन हाथ खींचोगी, उसी दिन रिश्ता टूट जायेगा.'

मैं बीजी की ओर देखने लगी थी. वे मुस्कराते हुए बोले — 'ऐसे क्यों देख रही हो, अपने अनुभवों से कह रही हूं. मैं जब इस देश में आयी थी, मैं भी तुम्हारी तरह अपने परिवार को लेकर भावुक थी. ख़ूब पैसा भेजा उन्हें. जब अपनी ज़िम्मेदारियां बढ़ीं और मायके की डिमांड्स को पूरा नहीं कर पायी, बस रिश्ते टूट गये. बेटी, जिनको लेने का स्वाद पड़ जाता है, उनके लिए रिश्तों की कोई क़ीमत नहीं होती.'

मुझे याद है उन्होंने लंबी सांस लेकर कहा था — 'दलजीत, पंजाब के जिन गांवों से हम हैं, वहां बाहर से पैसा आना चाहिए. धी भेजे या जवाई, साडे मापियां नूं कोई फरक नहीं पैदा. पिंड विच उन्हां दी शान होनी चाहिदी. विदेशां विच कुड़ियां ओह ऐवईं नहीं भेज दे (दलजीत, पंजाब के जिन गांवों से हम हैं, वहां बाहर से पैसा आना चाहिए. बेटी भेजे या दामाद, हमारे मां-बाप को कोई फरक नहीं पड़ता. गांव में उनकी शान होनी चाहिए. विदेशों में लड़कियां वे ऐसे ही नहीं भेजते.

फिर वे रो पड़ी थीं — 'हम बेवकूफ़ लड़कियां रिश्तों को निभाती यहां मरती-खपती रहती हैं; जैसे रिश्ते निभाने की ज़िम्मेदारी हमारी है, किसी और की नहीं.'

बीजी की बात आपने सही कर दी. रिश्ते निभाने की ज़िम्मेदारी मेरी है. किसी और की नहीं. मेरे भी तीन बच्चे हैं, उनके प्रति आपकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं. किसी आते-जाते के हाथ ही कुछ भेज दें आप. पहले पांच साल मैं आ नहीं सकी, पक्का वीज़ा नहीं मिला था. पर आपने भी कभी मेरे या मेरे बच्चों के बारे में नहीं सोचा था. पांच साल बाद गांव लौटी थी. भरे सूटकेस लेकर आयी थी, और ख़ुद ही उन्हें भर कर वापिस लायी थी, आपका हाथ तंग था, आप कुछ दे नहीं पाये. तब मेरे दो लड़कियां थीं. उन बेचारियों की क्या वैल्यू थी? क्या उपहार मिलते उन्हें? पर उसके बाद तो मेरे बेटा हुआ. तब आपने क्या उपहार दिया? ये कैसी एकतरफ़ा ज़िम्मेदारियां हैं. पिंड से लोग अमेरिका आते हैं, सोचती हूं, मेरे पेके (मायके) वालों ने कुछ भेजा होगा. वे लोग आते हैं मिल कर चले जाते हैं. मेरे ससुराल वाले अच्छे हैं, कुछ कहते नहीं, वरना कितने ताने सुनने पड़ते, सोच कर ही डर जाती हूं.

ग्यारह महीने पहले के पत्र में आपने लिखा है, बड़े वीर जी को बिज़नेस में घाटा पड़ गया, बैंक से जो लोन लिया था वह उतार नहीं सकते. पच्चास लाख का लोन है. जल्दी से पच्चास लाख भेज दो. दस साल नौकरी करते हो गये हैं तुम्हें. इतना पैसा तो जोड़ लिया होगा और बाऊ जी आपने तो कमाल कर दिया; मेरे वेतन के डॉलरों को रुपयों में बदल कर पूरा हिसाब मुझे लिख दिया कि इतना पैसा तेरे पास होना चाहिए.

बाऊ जी आप यह भूल गये, हम यहां डॉलरों में कमाते हैं, डॉलरों में ख़र्च करते हैं, रुपयों में नहीं. मैं यहां किसी कंपनी की प्रेज़िडेंट नहीं लग गयी हूं, कि ढ़ेर सारा कमाती हूं. बस वॉलमार्ट स्टोर के चैक आउट कॉउंटर की इंचार्ज़ हूं. जितना भी कमाती हूं, सिर्फ़ आप लोगों के लिए ही नहीं, मेरा यहां परिवार भी है, उसके प्रति मेरा दायित्व पहले है. मेरे तीन बच्चे हैं, उनके ख़र्चे मैं ही संभालती हूं.

बाऊ जी, जब मैं आगे पढ़ना चाहती थी, तब आपने मुझे पढ़ाया नहीं यह कह कर कि हमें कौन–सा लड़कियों से काम कराना है, अब आप मेरी तनख़्वाह की पाई-पाई का हिसाब रख रहे हैं. मेरा यह रूप मेरे सुसराल की देन है, मेरी

तनख़्वाह उनकी है, पर उन्होंने कभी कुछ नहीं चाहा, कोई हिसाब नहीं रखा. पिछले दस सालों से जो कुछ मैंने आपको भेजा इसी वेतन से भेजा, वह सब भी हिसाब में लिखिए और गणना कीजिए, कितना पैसा बचा होगा.

ग्यारह महीने पहले के पत्र को पढ़कर मुझे सबसे अधिक दु:ख इस बात का है, आपने लिखा है, अगर तुम्हारे पास पैसा नहीं तो पिंड में कुलदीप के परिवार की ज़मीन है, उसमें वह अपना हिस्सा गिरवी रखकर पैसा ले दे; ज्योंही तुम्हारे वीरे का काम सेट होगा, हम छुड़ा लेंगे. आपके इस व्यवहार से मैं बेहद आहत हुई हूं, निराश हुई हूं, बेइंतिहा दु:ख हुआ है मुझे. यह बात मेरे ससुराल से छिपी नहीं रहेगी, वे क्या सोचेंगे आपके बारे में? मेरे ससुराल ने आपसे कोई दहेज नहीं लिया, बेहद सादगी से मेरी शादी हुई. उन्होंने आपके पैसे ख़र्च नहीं करवाए. मुझे कभी आपकी मदद करने से मना नहीं किया. वे आप ही के गांव, आप ही की बिरादरी से निकले सभ्य, सुसंस्कृत और शरीफ़ लोग हैं. रिश्तों की क़द्र करते हैं. मुझे कभी आपकी इच्छाएं पूरी करने से रोका नहीं. सादे लोग हैं, बेहद अच्छे, पर आप उनकी सादगी और अच्छाई का यह क्या सिला दे रहे हैं. उनकी पुश्तैनी ज़मीन को गिरवी रखवाने का सोच रहे हैं. वह परिवार की संयुक्त ज़मीन है. एक बात स्पष्ट कर दूं बाऊ जी, सब अलग-अलग घरों में रहते हुए भी मिलजुल कर रहते हैं. इस देश में आकर तो रिश्तों की असली पहचान हुई है, कैसे सब मिलजुल कर रहते हैं. यहां बड़ी-बड़ी बातों को चाय का कप पीते हुए सुलझा लिया जाता है, छोटी-छोटी बातों की ओर तो कोई ध्यान ही नहीं देता. देश में अपने घर में सालों पुरानी बातों की लकीर पीटते रहते हैं. पुरानी बातों को भुला कर आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेते.

जब मैं शादी होकर आयी थी, उसी दिन कुलदीप ने बता दिया था, वे पुरखों की ज़मीन में कोई हिस्सा नहीं चाहते. मैं बहुत ख़ुश हुई थी, एक खुद्दार आदमी से शादी हुई है और उन्होंने कहा था कि वे मां-बाप से भी कुछ लेना नहीं चाहते, हम अपनी ज़िंदगी में सब कुछ ख़ुद कमा कर बनाएंगे और बाऊ जी, बीजी हम वही कर रहे हैं.

आपने लिखा, आपने मुझे जन्म दिया, पढ़ाया-लिखाया और विदेश में शादी की ताकि मैं ऐश करूं तो ऐसे मां-बाप के लिए मैं पच्चास लाख नहीं भेज सकती और आगे आपने लिखा है अगर तेरे वीरे को जेल हुई तो पूरे ख़ानदान में कोई तुझे माफ़ नहीं करेगा, तुम्हें ही दोषी ठहराया जाएगा.

बाऊ जी-बीजी, आपने मुझे जन्म दिया, पाला-पोसा, इस काबिल बनाया कि विदेश में अपनी ससुराल में इज़्ज़त के साथ रह रही हूं. आभारी हूं आपकी और हर बच्चे पर अपने मां-बाप का यह कर्ज़ा होता है. हर मां-बाप सदियों से यह सब अपने बच्चों के लिए करते आ रहे हैं. मैं भी अपने बच्चों के लिए वही कर रही हूं और करती रहूंगी. पर मैंने सोच लिया है, मैं उन्हें दुनिया में लायी हूं, उनके लिए कुछ भी करना मेरा फ़र्ज़ है, उन पर कर्ज़ नहीं. कर्ज़ की इस तरह वसूली जो आप मेरे से कर रहे हैं, मैं अपने बच्चों से नहीं करूंगी... एक बात और कहना चाहती हूं, मुझे ख़ानदान दोषी क्यों ठहराएगा, बैंक से लोन लेते समय आपने मुझे पूछा था, क्या मैंने कोई गारंटी दी थी? पूरा ख़ानदान मिल कर कर्ज़ा नहीं उतार सकता, पर दूर दराज़ बैठी बेटी को दोषी ठहरा सकता है. आफ़रीन हूं ऐसे ख़ानदान पर. दस साल मैंने दिल खोल कर भरपूर आप सबको दिया, तब ख़ानदान के किसी बंदे ने मेरी पीठ नहीं ठोकी. आपने अपने दामाद और दोहते-दोहतिनों को कभी कुछ नहीं दिया, तब ख़ानदान ने आपको दोषी नहीं ठहराया. दोधारी सोच और दोहरी मानसिकता ऐसे ख़ानदान को मुबारक, जो अपने स्वार्थ और सहूलियत से बदलता है और नियम बनाता है.

बीजी आपने लिखा — 'मैंने ऐसे धी (बेटी) लेकर क्या करना, जो अपने धर्म के काम न आ सके.'

आपने यह कभी नहीं कहा, 'मैंने ऐसा बेटा लेकर क्या करना, जो बहन के काम न आ सके.'

मुझे याद है मैंने एक बार वड्डे वीरे से कुछ मांगा था तब आपने कहा था — 'दलजीत, तुम्हें जो चाहिए मुझ से मांग, उसे तंग मत कर, हम बैठे हैं अभी.' तो ठीक है बीजी आप अभी बैठे हैं, वड्डा वीरा आपसे मांगे, मुझे तंग मत करें.

अब आप मुझे कटघरे में खड़ा करके दोषी ठहराना चाहते हैं तो ठहरा लीजिए या अपने जीवन से निकाल देना चाहते हैं तो निकाल दीजिए. रब को शायद पता था तभी उसने मुझे इतना बढ़िया पति, बच्चे और ससुराल वाले दिये, ताकि जब आप अपने जीवन से मुझे निकालें तो कोई मुझे थाम ले.

आपकी नालायक कुड़ी,

दलजीत कौर.'

101, Guymon Court, Morrisville,
NC-27560 USA
Mob. : 9198010672
Email : sudhadrishri@gmail.com

लघुकथाएं

✍ राजकमल सक्सेना

फ़ैसला

चौपाल पर जुटी भीड़ में हर किसी के चेहरे पर ख़ौफ़-सा छाया हुआ था.

'क्या हुआ?' अचानक भीड़ में धीरे से कोई फुसफुसाया.

'महादेव की लड़की झुल गयी है.' एक महाशय बोले.

'कब?'

'बीती रात को-किसी ग़ैर जात के लड़के से विवाह करना चाहती थी, आज पंचायत बैठने वाली थी.' प्रश्नकर्ता को एक ने बताया.

'अब अपने आप नहीं मरती तो क्या करती बेचारी, ज़िंदा रहती तो ये खाप वाले...'

... और मौत के उस सन्नाटे को चीरता एक और सन्नाटा भीड़ भरी चौपाल पर पसर गया.

कुली

✍ डॉ. एन. एन. लाहा

प्राध्यापक के इंटरव्यू के दौरान जब वह मेरे सामने आया तो मैं चौंक पड़ा. उसने शानदार साक्षात्कार दिया. उसका चयन हो गया.

बाद में जब मैं बाहर गया तो वह बैंच पर बैठा मिला. मैंने उससे पूछा, 'तुम वही कुली हो ना जिसने सुबह स्टेशन पर मेरा सामान उठाया था?'

उसने धीमे से कहा, 'हां, मैं ही था. दिन में कुलीगिरी करता हूं और रात्रि में पढ़ाई करता हूं.'

मन ही मन मैं नतमस्तक हो गया.

✆ २७, ललितपुर कॉलोनी,
डॉ. पी. एन. लाहा मार्ग, ग्वालियर
फो : ०७५१-२३२२७७७

भेड़चाल

रह-रहकर पानी बरस रहा था. उधर चिता में अग्नि लगायी जा चुकी थी. लकड़ी व कंडे गीले होने के कारण अग्नि प्रज्वलित नहीं हो पा रही थी. साथ आये दो-तीन लोग जोर-जोर से चिता में शक्कर झोंक रहे थे ताकि अग्नि प्रज्वलित हो सके. चिता से चार-पांच जगह से धुआं निकल रहा था. थोड़ी ही देर में प्रयास सफल हुआ. चिता ने अग्नि पकड़ ली. साथ आये लोगों में से कुछ लोगों के मोबाइल चालू हो गये. कुछ फ़ोटो खींच रहे थे तो कुछ वीडियो बना रहे थे – चिता के चारो ओर घूम-घूम कर. तभी एक सज्जन चिता को बैक ग्राउंड में रखकर सेल्फ़ी लेने के मूड में आ गये. विभिन्न कोणों से उन्होंने अपनी और चिता की सेल्फ़ी के कई शॉट्स ले लिये.

घर पहुंचकर देखा कि कई लोगों के वाट्सएप व फ़ेसबुक पर चिता के फ़ोटो फॉरवर्ड किये गये थे. इन पर लोगों की घिसी-पिटी परंपरागत हास्यास्पद टीका-टिप्पणियों का कई दिनों तक आना जारी रहा .

'ऑसम.'
'वाओ.'
'रिप.'
'नाईस क्लिक.'
'क्यूटी पाई.'
'नाईस पिक.'

✆ १०४, कुटुंब अपार्टमेंट, बलवंतनगर,
थाटीपुर (मुरार) ग्वालियर-४७४००२

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

भजनिया बॉस

हरिप्रकाश राठी

८ सितंबर १९५५; एम. कॉम,
सीए आई.आई.बी;
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया से
२००१ में सेवा निवृति

: प्रकाशन :

अगोचर, सांप-सीढ़ी, आधार, पीढ़ियां, पहली बरसात, माटी के दिये, नेति-नेति, कायनात (कथा-संग्रह); कतिपय कहानियों का अंग्रेज़ी अनुवाद ('ऑन द विंग्स ऑफ कुरजां) तथा 'प्रतिनिधि कहानियां एवं 'हरिप्रकाश राठी की कहानियां' प्रकाशित.
राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न अख़बारों में सामयिक, राजनैतिक एवं अन्य विषयों पर शताधिक आलेख.

: सम्मान :

राष्ट्रीय स्तर पर : विक्रमशिला विद्यापीठ, इशीपुर, बिहार, जैमिनी अकादमी, पानीपत, हरियाणा, पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, शिलांग, पंजाब कला साहित्य अकादमी, मौनतीर्थ फाउंडेशन उज्जैन, निराला फाउंडेशन, बस्ती, संस्कृति सम्मान;
राज्य स्तर पर : यूनेस्को चैप्टर, राजस्थान द्वारा, यूनेस्को साहित्य सम्मान.
स्थानीय स्तर पर : अखिल भारतीय साहित्य परिषद, शब्द संस्कृति संस्थान, जोधपुर, सृजनात्मक संतुष्टि संस्थान, जोधपुर, सबरंग साहित्यकार परिषद, जोधपुर, माहेश्वरी समाज, जोधपुर, वीर दुर्गादास राठौड़ सम्मान.

कालीगढ़ के ठाकुर बृजेंद्र सिंह न सिर्फ़ एक कुशल प्रशासक थे, अपने इलाक़े में लोकप्रिय भी थे. उनका रुतबा अपने इलाक़े में ही नहीं, आस-पास के गांवों तक फैला था. चांदी की मूठ लगी लकड़ी हाथ में लिये वे गांव से निकलते तो लोग आंखें नीचे कर अभिवादन की मुद्रा में खड़े हो जाते. उनसे आंख मिलाकर बात करने की हिम्मत तो आज तक किसी में नहीं हुई.

ठाकुर सत्तर के पार थे लेकिन आज भी उनके चेहरे पर सूर्य का तेज़ बसा था. ऊंचा क़द, तीखे नक्श एवं सुर्ख बड़ी-बड़ी आंखें उनके राजपुरुष होने की गवाही देतीं. तनी हुई ऊपर की ओर जाती घनी सफ़ेद मूछें एवं ठोड़ी के बीच से दो भाग होकर दोनों गालों पर चढ़ती दाढ़ी उनके रुतबे को और बढ़ाती. पुरुषों की दाढ़ी जाने किस अंग्रेज़ीयत में खो गयी लेकिन इस बात से इंकार आज भी नहीं किया जा सकता कि पुरुष वीर तो दाढ़ी में ही लगता है.

आज़ादी के बाद ठिकाने भले इतिहास में दफ़न हो गये हों लेकिन गांव में उनका भय आज भी जस का तस है.

ठाकुर साहब की लोकप्रियता का एक ख़ास कारण उनकी विनोदप्रियता भी थी. स्वभाव से हंसमुख तो थे ही, रंगीन मिज़ाज भी थे. अक्सर उनके यहां नाच-गानों का कार्यक्रम होता रहता. अनेक बार चौपाल के बीच महफ़िल जमाकर वे गांव वालों को अपने पुरखों के शौर्य एवं गौरव की कथाएं सुनाते हुए दिख जाते. कभी-कभी वे लतीफ़े सुनाते एवं सुनने में भी रस लेते. हां, अंतरंग होने पर भी वे सबको एक दूरी पर रखते, किसी को औकात से बाहर नहीं आने देते. लोग उनकी बातों में जितने चटकारे लेते उतने ही उनसे सहमे रहते. सिर्फ़ गांव वाले ही नहीं, गांव में रहने वाले नायब, पटवारी, सरकारी अध्यापक एवं अन्य सरकारी कर्मचारी भी उनसे अदब से पेश आते. उन्हें मालूम था गांव में सुख से रहना ठाकुर साहब की कृपा के बिना संभव नहीं है. जल में मगर से बैर मूर्खता नहीं तो और क्या है? ऐसा दुस्साहस करने वाले अंततः अपनी फजीती ही करवाते हैं.

ठाकुर का स्थानीय राजनीति में भी पूरा दख़ल था. पास ही शहर से विधायक एवं सांसद तक कई बार उनसे मिलने आते. उन्हें मालूम था ठाकुर की

ज़रा सी नाराज़गी उनके वोटों का गणित बिगाड़ सकती थी.

विधाता ने भी उन्हें हर सुख से नवाज़ा था. रियासतों के दिन भले न रहे हों, गांव की आधी से अधिक ज़मीन आज भी उनके नाम थी. हवेली में दो-दो जीपें एवं तीन चार मोटर साइकिलें हर समय खड़ी मिलतीं. गांव के लोग तो यहां तक कहते कि उनके खजाने में सोने की ईंटें एवं बेशक़ीमती जवाहरात तक रखे हैं. उनके नज़दीकी लोग गांव में गुप-चुप ऐसी बातें करते रहते. ठाकुर साहब भी इन बातों का कभी खंडन नहीं करते. उन्हें मालूम था उनकी वर्तमान मिलकीयत उनके पुरखों की आधी भी नहीं है पर वे यह भी अच्छी तरह समझते थे कि बंद मुट्ठी लाख की होती है.

अपने एकमात्र पुत्र कुंवर गजेंद्र सिंह से ठाकुर बेइंतहा प्रेम रखते. उसे देखते ही उनका कलेजा ठंडा हो जाता. हर एक कार्य में उससे राय मिलाते. वही एक था जिसके आगे ठाकुर साहब को कभी-कभी झुकना पड़ता था. उनके परिवार वाले ही नहीं गांव वाले भी ठाकुर साहब से ख़ास काम निकलवाने अथवा उन्हें प्रसन्न रखने में उसी की मदद लेते. उसका रूप-दर्प भी देखने लायक था. जैसे एक दीपक की लौ से प्रज्ज्वलित होकर दूसरा दीपक भी उतना ही प्रकाश देने लगता है, उसका रुआब भी बाप जैसा ही था. अब वह भी चालीस के पार था.

इन सभी सुखों के बीच ठाकुर साहब को एक दुःख अक्सर सालता. कुंवर के अब तक कोई औलाद नहीं थी. कुंवरानी एवं ठकुराइन सभी कुछ कर निरुपाय हो चुके थे. इसी चिंता को मन में बसाये रात कई बार ठाकुर हवेली की छत पर गंभीर मुद्रा में इधर-उधर घूमते नज़र आते. उनकी चिंता स्वाभाविक थी — बिना वंशधर के इस अथाह संपत्ति का क्या होगा? इसी इच्छा को दिल में लिये वे द्वारकाधीश दर्शन की योजना बनाने लगे थे. अपने आराध्य के दर्शन कर वे दिन रात सालती इस गांठ को उसके आगे खोलना चाहते थे.

वाक़ई क़माल हो गया. सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थनाओं को प्रभु ने कब अस्वीकारा है? ठाकुर जब द्वारिका से लौटे तो उन्हें शुभ संदेश मिला कि कुंवरानी गर्भ से हैं. ठाकुर इस ख़बर को सुनकर निहाल हो गये. नौ माह बाद जब गजेंद्र के पुत्र हुआ तो उन्होंने गांव भर में वर्क लगे मलाई वाले लड्डू बंटवाए. मन का आख़िरी कांटा भी द्वारकाधीश की कृपा से निकल गया. उनका मन-मयूर आज हर्ष के सारे पंख फैलाकर नाचने लगा था.

इस बात को भी तीन माह होने को आये. आज बहू की कुंआ पूजा का दिन था. ठाकुर सुबह से ही उत्साहित थे. सुबह से कारिंदों को यह-वह काम करने का निर्देश दे रहे थे. रात भजन संध्या का प्रोग्राम था पर अब तक भजनियों को संदेश ही नहीं गया था. ठाकुर को इसकी किंचित चिंता नहीं थी, वे आश्वस्त थे. उन्हें मालूम था उनके बुलावे भर से भजनिये दौड़े आयेंगे.

गांव में इन भजनियों को लोग 'भजनिया बॉस' कहकर बुलाते. वर्षों पूर्व एक अंग्रेज़ ने जो शायद ग्राम्य जीवन पर रिसर्च करने आया था, उनके संगीत से मुग्ध होकर 'ग्रेट बॉस' क्या कहा, गांव वाले भी उन्हें 'भजनिया बॉस' कहने लग गये. अन्य भजनिये भी इस अंग्रेज़ी अलंकरण को लगाकर निहाल हो गये.

हर अच्छे उत्सव पर भजनिया बॉस को बुलाना मानो एक प्रथा बन गयी थी. अनेक बड़े-बूढ़े उन्हें नारद का वंशधर बताते. जाने क्या-क्या किंवदतियां इनके नाम के साथ जुड़ी थीं. कुछ इन्हें अर्धनारीश्वर का अवतार मानते, ऐसा इसलिए कि यह होते तो पुरुष हैं पर चलते समय इनकी चाल में एक विशिष्ट स्त्रैण लोच एवं नजाकत परिलक्षित होती है. ये बाल भी स्त्रियों की तरह लंबे रखते हैं, आंखों में काजल एवं स्त्रियों ही की तरह माथे पर सिंदूर की मोटी बिंदी भी लगाते हैं. लाल किनारी की सफ़ेद धोती एवं कुर्ता इनकी ख़ास पोशाक है जो वे अक्सर पहनते हैं. पान खाने के यह इतने शौक़ीन होते हैं कि पान भरी चांदी की डिब्बी सदैव इनके साथ रहती है. इनके पट्ठों में एक पीकदान भी पकड़े रहता है. उनकी इन्हीं अदा के कारण गांव के मनचले एवं विनोदप्रिय रसिक कभी-कभी इनका मज़ाक भी बनाते रहते हैं. अभी परसों ही गांव का किशनाराम सुथार चौपाल पर उदास बैठा था तो किसी ने ताना दिया, 'बेचारे की बीबी एक माह से पीहर है, दुःखी तो होगा ही.' तभी एक मनचले ने फ़िकरा कसा, 'थोड़े दिन किसी भजनिये को घर क्यों नहीं रख लेते.' किशना तब उसके पीछे जूते लेकर भागा था.

गांव में मात्र दो संप्रदाय के भजनिये हैं — एक राम मतावलंबी एवं एक कृष्ण मतावलंबी. राम मतावलंबी राम के भजन गाते हैं एवं मात्र राम का गुणगान करते हैं. इसके ठीक उलट कृष्ण भजनिये मात्र कृष्ण का गुणगान एवं कीर्तन करते हैं. इन दोनों के सरदार भी अलग-अलग है. दोनों

अपने-अपने पथ पर कट्टर हैं इसलिए गांव में जहां कहीं भी भजनों का प्रोग्राम होता है तो एक ही पथ का भजनिया जाता है. साथ ही उसकी टीम भी जाती है जिसमें मंजीरे, चिमटा, ढोलक एवं तबला बजाने वाले भी होते हैं. हारमोनियम मुख्य भजनिये के पास ही होता है जिस पर उसकी अंगुलियां गीत के सुरताल के साथ नाचती रहती हैं. मज़ेदार बात यह है कि राम भजनियों एवं कृष्ण भजनियों की आपस में इतनी प्रतिद्वंदिता है कि दोनों कभी एक प्रोग्राम में साथ नहीं होते. राम भजनिये के साथ बैठना कृष्ण भजनिया अपमान मानता है एवं ठीक ऐसा ही राम भजनियों के साथ है. दोनों में सांप-नेवले का संबंध है इसलिए गांव में दोनों को एक साथ न्यौता कभी नहीं जाता. कोई सौ वर्ष पूर्व दो भजनिये भाइयों में जाने क्या झगड़ा हुआ, दोनों ने दो अलग संप्रदाय बना लिये. झगड़ा आगे इतना बढ़ा कि दोनों के वंशधर तक एक दूसरे को फूटी आंखों नहीं सुहाते.

लेकिन ठाकुर साहब से इस बार निमंत्रण देने में जाने कैसे ग़लती हो गयी. सुबह ग्यारह बज़े उन्होंने किसी को कृष्ण भजनियों के सरदार को निमंत्रण देने भेजा तो सरदार घर पर नहीं था. बाद में ठाकुर साहब ने किसी अन्य को भेजकर राम भजनिये के सरदार से अनुबंध कर लिया. इसी बीच पहले निमंत्रण देने गये कारिंदे को राह में कृष्ण भजनियों का सरदार दिख गया, उसने उसे भी निमंत्रण दे दिया. राम भजनियों के सरदार को भेजे निमंत्रण की उसे ख़बर ही नहीं पड़ी. अपने ज़िम्मे दिये काम को उसने मौक़ा मिलते ही पूरा किया. दिन भर की आपा-धापी में ठाकुर साहब भी उससे पुनः बात नहीं कर सके.

होनी होकर रहती है. शाम ठाकुर साहब पाट पर अपने मित्रों के साथ बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे. पास ही मोढ़ों पर गजेंद्र, ठकुराइन एवं सामने गांव के सैकड़ों लोग बैठे थे. ठंडी पुरवाई चल रही थी. तभी कुंवरानी बच्चे को लेकर आयी एवं उसे ठाकुर साहब के हाथों में दे दिया. पोते को देखकर उनकी आंखें ही नहीं मूंछे तक मुस्कुरा उठीं. ठाकुर साहब के बगल में बैठे मित्रों में से एक बोल ही पड़ा, 'आपका पोता तो पूरा कान्हा लगता है बस मोरपंखी की कसर है.' अपने मित्र की बात सुनकर ठाकुर साहब की छाती फूल गयी, उनकी आंखों का दर्प दोगुना हो गया. प्रसन्न होकर बोले, 'तभी तो इसका नाम मदनगोपाल रखा है.'

कविता

गाय-गाय

✍ *सतीश राठी*

सुनो! क्या कर रहे हो?
कुछ नहीं.
एक खेल खेलोगे?
कौन-सा खेल?
गाय-गाय.
क्या होता है इस खेल में?
कुछ नहीं एक बिज़नेस करते हैं बस.
कैसा बिजनेस?
गाय का नाम लेकर विकास को रोक देते हैं.
तो विकास को क्यों रोक देते हैं?
इसलिए कि लोग गाय में उलझ जायें और हम अपने काम में लग जायें,
व्यवसाय तो आख़िर फ़ायदा कमाने के लिए किया जाता है.
फिर गाय का क्या होता है?
क्या होना है. या तो ख़ुद मरती है या उसके नाम पर लोग मरते हैं और अधिक उलझन हो
तो हम गाय को दान कर देते हैं.
तो फिर विकास?
उसे फिर कौन पूछता है?

आर-४५१, महालक्ष्मी नगर,
इंदौर-४५२०१०.
मो. : ९४२५०६७२०४

अब सबको भजनिये का इंतज़ार था. गांव वालों में खुसर-फुसर होने लगी थी, 'आज भजनिये क़माल के भजन गायेंगे. ठाकुर साहब के प्रोग्राम में उनका गला नहीं खुला तो कब खुलेगा.' इसी बीच भीड़ में से एक व्यक्ति बोला, 'गला क्यों नहीं फाड़ेंगे, बख्शीश अच्छे-अच्छों के सुर बदल देती है.' इस बात को सुनकर भीड़ में बैठे सभी जोर से हंसने लगे तभी कोई दायीं ओर देखकर बोला, 'लो! राम भजनियों का सरदार तो आ गया.' तभी एक और व्यक्ति बायीं ओर देखकर बोला, 'अरे! आज तो कृष्ण भजनियों का सरदार भी चला आ रहा है.' कमाल हो गया.

वहां इकट्ठी भीड़ को ही नहीं, ठाकुर साहब की आंखें भी यह देखकर विस्मय से फैल गयीं कि दोनों दिशाओं से

दोनों भजनिये अर्थात् एक तरफ़ से राम भजनिया एवं दूसरी ओर से कृष्ण भजनिया अपने-अपने पट्ठों के साथ चला आ रहा है. दोनों को एक साथ निमंत्रण देने की त्रुटि कैसे हुई? आज बवाल मचना तय था. चतुर ठाकुर ने क्षण भर में स्थिति का ज़ायजा ले लिया. आज उनके प्रशासकीय कौशल की परीक्षा थी.

दोनों भजनिये ठाकुर साहब के सामने आकर खड़े हो गये. दोनों ने ठाकुर के चरण स्पर्श किये एवं फिर अपने प्रतिद्वंदी भजनिये को वहां देखकर एक-दूसरे पर आंखें तरेरने लगे. दोनों एक-दूसरे को ऐसे घूर रहे थे मानो आज उनका ही नहीं उनकी पीढ़ियों का अपमान हो रहा था. दोनों मन ही मन सोच रहे थे — ठाकुर ने ऐसा उपहास क्यों किया? बिरादरी में अब क्या जवाब देंगे? दोनों में ठाकुर के यहां से उल्टे पांव लौटने का साहस भी नहीं था, इससे ठाकुर साहब नाराज़ तो होते ही, बख़्शीश भी दांव पर लग जाती.

इसी असमंजस में राम भजनिये का तनाव सर चढ़ बैठा. उससे न रहा गया. आंखें तरेर कर कृष्ण भजनिये से पूछा, 'जब निमंत्रण हमारे नाम था तो तुम क्योंकर चले आये? क्या आजकल धंधा-पानी नहीं मिलता या इन दिनों बिना निमंत्रण भी जाने लगे हो'? कहते-कहते उसने स्त्रैण मुद्रा में लचकते हुए अपने पट्ठों की ओर देखा. सभी ने उस्ताद से सहमति जताते हुए गर्दन आगे कर अपने होठों पर अंगुलियां इस तरह रखीं मानो वे आश्चर्य के अथाह समुद्र में डूब गये हों.

'मर्यादा में बात कर! हम तो नौरे खाने पर भी नहीं जाते. लोग चार बार बुलाने आते हैं तो हां करते हैं. ख़ुद ठाकुर साहब के नौकर ने गांव के मुख्य रास्ते पर हमें दावत दी तब आये हैं? तुम्हारी तरह भुक्कड़ हैं क्या?' कृष्ण भजनिये का करारा जवाब सुनकर उसके पट्ठों ने भी अंगुलियां ओठों पर रख कर सहमति में गर्दनें हिलायीं.

'निमंत्रण तो हमें मिला है! हम तुम्हारी तरह राह चलते निमंत्रण नहीं लेते, ठाकुर साहब का कारिंदा गिरधारी ख़ुद हमारे घर कहने आया था, तब आये हैं. पूछ क्यों नहीं लेते गिरधारी से? हम तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सेवक हैं, जहां जाते हैं मर्यादा, सम्मान एवं स्वाभिमान से जाते हैं. तुम्हारे कान्हा की तरह बिन बुलाये गोपियों के घर जाकर मटकियां नहीं फोड़ते.'

अपने आराध्य कृष्ण की बुराई सुनते ही कृष्ण भजनिया तमतमा गया. आंखों से अंगारे बरसाते हुए बोला, 'तमीज़ से बात कर मूढ़!' कहते-कहते कृष्ण भजनिया लगभग चीख़ पड़ा.

'ये आंखें किसी और को दिखाना. मैंने कुछ ग़लत कहा है क्या? कृष्ण माखन नहीं चुराते थे क्या? क्या ब्याहता राधा को उन्होंने अपने प्रेम में नहीं फंसाया? कुरुक्षेत्र के समरांगण में भी छल के अतिरिक्त किया क्या था उन्होंने?'

'तुम्हारे रामजी कम थे क्या? क्या उन्होंने बाली का छल से वध नहीं किया? सती सीता की अग्नि परीक्षा नहीं ली? काने धोबी के लांछन लगाने पर सीता को वनवास नहीं दिया? कहां चली गयी थी मर्यादा पुरुषोत्तम की मर्यादा उस समय? अपनी फूटी तो दिखती नहीं दूसरे की फूली निहारते हो?' कहते-कहते कृष्ण भजनिया हांफने लगा.

'अरे रामजी की महिमा तुम क्या जानो. जीते जी भले तुम कृष्ण को जपो मरते समय तो राम नाम सत्य ही कहते हो. रामजी के नाम बिना मोक्ष मिलता है क्या?' राम भजनिये ने नहले पर दहला मारा.

माहौल गरमाने लगा था. दोनों एक दूसरे पर फिकरे कसते चले जा रहे थे. ठाकुर साहब, उनका परिवार, उनके मित्र एवं वहां बैठी जनता भी इन रसिक संवादों का आनंद ले रही थी. यकायक कृष्ण भजनिये के हाथ तुरूप लगी. अंतिम पत्ता फेंकते हुए बोला, 'अरे कृष्ण की महिमा नहीं होती तो ठाकुर साहब अपने पोते का नाम 'मदनगोपाल' रखते क्या? तुम्हारे तर्क से तो ठाकुर साहब भी ग़लत हुए.'

इस तर्क का राम भजनिये के पास तोड़ नहीं था. उसने गले से विष घूंट उतार लिये. उसका बस चलता तो वह कृष्ण भजनिये का गला दबा देता लेकिन आज ठाकुर साहब का प्रोग्राम था इसलिए चुप रहना ही लाज़मी था. उससे न उगलते बन रहा था न निगलते. क्षण भर के लिए वह मानो गज़ भर ज़मीन में धंस गया.

स्थिति देखकर ठाकुर ने मोर्चा संभाला, 'अरे भजनियों! झगड़ते क्यों हो? राम एवं कृष्ण दोनों थे तो विष्णु के ही रूप. अवतार तो दोनों ने धर्म की रक्षा के लिए ही लिया था.' वे कुछ और कहते उसके पहले ही राम भजनिया बोला, 'लेकिन पहले तो हमारे प्रभु ही आये थे. हमारे रघुनाथ तो त्रेता में ही आ गये थे, यह तो द्वापर में आये हैं. हमसे तो ज़ूनियर है.'

कृष्ण भजनिया कौन-सा कम था. तुनक कर बोला,

'देर से पैदा होना गुनाह है क्या? अब मदनगोपाल कुंवर के बाद आये हैं तो कोई क़सूर कर दिया है?'

राम भजनिये की गोटियां फिर पिट गयीं. चतुर ठाकुर दोनों को हिलते-ललकारते देख असमंजस में थे, आंख के इशारे से उन्होंने दोनों को बैठने को कहा.

दोनों जाजम पर बैठ गये. ठाकुर साहब ने कुछ देर चुप रहकर हुक्का गुड़गुड़ाया फिर जाने क्या सोचकर मुस्कुरा उठे. सोचते-सोचते उनकी रंगीनीयत एवं विनोदप्रियता चांद पर चढ़ बैठी. कृष्ण भजनिये की ओर देखकर बोले, 'आज तुम दोनों की परीक्षा है. ऐसा करो तुम कृष्ण का भजन सुनाओ', इतना कहकर वे राम भजनिये की ओर मुड़े, उसके कंधे पर हाथ रखकर बोले, 'यह जो भी गाता है तुम उसकी काट करो. आज हम भी देखते हैं कौन अधिक काव्यमर्मज्ञ है.'

चौपाल पर आती ठंडी हवाएं सबके मन को आनंद एवं उन्माद से भर रही थीं. आसमान का मुस्कुराता पूर्ण चंद्र भी आज क्षण भर ठहर कर इन क्षणों का आनंद लेना चाहता था. भीड़ कौतुक से दोनों भजनियों को देख रही थी तभी कृष्ण भजनिये ने हारमोनियम लिया, सुर छोड़े एवं मधुर सुरों में भजन का मुखड़ा सुनाना प्रारंभ किया.

'छोटी-छोटी गैया छोटे-छोटे ग्वाल,
छोटो सो मेरो मदन गोपाल...'

इन्हीं पंक्तियों को एक बार उसने पुनः ऊंचे स्वर में दोहराया तो उसके पट्ठे जोर-जोर से मंजीरे, चिमटे एवं ढोलक बजाने लगे. सम पर जब वह थमा तो कृष्ण भजनिये की आंखें शरारत से सराबोर थीं मानो रामभजनिये को कह रहा हो, कर बुराई मदनगोपाल की! ठाकुर के लट्ठ पड़ेंगे तब समझ में आयेगी.

अब राम भजनिया गंभीर हो गया. आज रघुनाथ की इज्जत दांव पर थी. सम से पकड़कर उसने भी गाना प्रारंभ किया. उसे मालूम था मदनगोपाल की बुराई भारी पड़ सकती है. ठाकुर पोते के नाम की बुराई कभी बरदाश्त नहीं करेगा. इतनी जोखिम लेना ठीक नहीं है, फिर जाने क्या युक्ति उसके दिमाग़ में कौंधी — मदनगोपाल की ना सही उसके ग्वाल-बाल और गायों की तो दुर्गत कर ही सकता हूं. बाक़ी को तो ठिकाने लगा ही सकता हूं. उसने भी हारमोनियम पर सुर साधकर गाना प्रारंभ किया.

'खोटी तेरी गैया खोटे तेरे ग्वाल... फिर इसी पंक्ति को दोहराते हुए ठाकुर के पोते की ओर इशारा करते हुए आगे बढ़ा, 'बीच में सोहे मेरो मदनगोपाल' कहकर मुखड़ा समाप्त किया.

उसके पट्ठों ने भी मंजीरे एवं ढोलकी की थापों से अपने बॉस का हौसला बुलंद किया.

कृष्ण भजनिये के अंतस में राम भजनिये की चतुराई विष-तीर सी लगी. सम पर जब पुनः अंतरा उसके हाथ में आया तो उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर पंचम स्वर में गाना प्रारंभ किया.

'घास खाये गैया,
दूध पीये ग्वाल...'

फिर इसी को आरोह देते हुए बोला.

'बंशी बजाए मेरो मदन गोपाल.'

गाते-गाते उसने राम भजनिये की ओर ऐसे देखा मानो कह रहा हो इसका तोड़ तो तेरी सात पुश्तें भी नहीं ला सकतीं.

सम पर जब पुनः राम भजनिये ने सुर संभाले तो उसने ऊपर देखकर रघुनाथ का स्मरण किया फिर उन्हीं की दुहाई लेकर स्वरों को शिखर पर चढ़ा दिया. कुछ क्षण पश्चात् वह एकाएक थमा एवं हारमोनियम अपने पास ही बैठे पट्ठे को संभलाकर खड़ा हो गया. दांये कान पर हाथ रखकर उसने जब स्वर तीखे किये तो भीड़ अचंभित रह गयी.

'लात खाये गैया,
जूत खाये ग्वाल.'

इन्हीं पंक्तियों को उसने एक बार पुनः दोहराया फिर ठाकुर साहब के पौत्र को हाथ में लेते हुए बोला.

'लट्ठ मचकावे मेरो मदनगोपाल.'

उसके इतना बोलते ही ढोलकी एवं मंजीरे इतनी तेज़ी से बजे की कृष्ण भजनिया देखता रह गया. गांव वालों एवं ठाकुर दोनों को अंतिम पंक्ति इतनी भायी कि सभी एक स्वर में बोल उठे...'लट्ठ मचकावे मेरो मदनगोपाल.'

परवान चढ़े युद्ध में अंतिम अंतरा धरा रह गया.

भीड़ का उत्साह देखते बनता था. बिना मदनगोपाल की प्रतिष्ठा को आहत किये आज राम भजनिये ने जंग जीत ली थी. कृष्ण भजनिया मन मसोस कर रह गया.

बख़्शीश देने का समय आया तो ठाकुर ने दोनों को एक हज़ार रुपये दिये. अपने अपमान से आहत कृष्ण

भजनिया किसी शहतीर को खोज रहा था. यकायक उसके मस्तिष्क में एक विचार कौंधा. एक हज़ार रुपये ठाकुर के चरणों में रखते हुए बोला, 'हम कृष्ण भजनिये हैं, भिखारी नहीं. मदनगोपाल के जन्मोत्सव में हम बख़्शीश नहीं लेंगे. हमारे लिए तो इनके दर्शन ही काफ़ी हैं.'

अपने वाक्चातुर्य से कृष्ण भजनिये ने ठाकुर का दिल जीत लिया. अब राम भजनिये की बारी थी. वह कौन-सा कम था, उसने वे हज़ार रुपये भी उठा लिये, ठाकुर के चरण स्पर्श करते हुए बोला, 'हम राम भजनिये हैं, यह बख़्शीश भी हम रख लेते हैं. आगे जब ठाकुरजी की कृपा से आपके एक और पौत्र होगा तो उसका नाम रघुनाथ रखेंगे. तब हम बख़्शीश नहीं लेंगे.'

कृष्ण भजनिया जलकर राख हो गया. उखड़ कर बोला, 'राम, कृष्ण के बाद कैसे पैदा होंगे?'

'त्रेता की ग़लती अब नहीं दोहरायेंगे. ठाकुर साहब के एक और पोता हो तो हम ज़ूनियर ही भले.' कहते-कहते उसने कृष्ण भजनिये की ओर ऐसे देखा मानो उसे कच्चा खा जायेगा.

सामने खड़े ठाकुर जाने क्या सोच कर खिलखिलाकर हंस पड़े. उन्हें हंसते देख कृष्ण भजनिया चुपके से पट्ठों के साथ सरक लिया. हंसी थमी तो राम भजनिये के कंधे पर हाथ रखकर बोले, 'भई आज तो आनंद आ गया. तुमने भी मदनगोपाल से क्या ख़ूब लट्ठ मचकवाये.'

अब सारी भीड़ में हंसी के ठहाके गूंज रहे थे. अपनी विजय से उन्मत राम भजनिये के भीतर फुलझड़ियां फूट रही थीं. भागते हुए कृष्ण भजनिये को देख उसके ज़ुबान की खुजली और बढ़ गयी. तेज़ गति से चलकर वह कृष्ण भजनिये के समीप आया. पिटे हुए शत्रु को देखने भर से कलेजा ठंडा हो जाता है. उसके निकट आकर पहले उसने कजरारी आंखें घुमायीं फिर उसकी ओर देखकर बोला, 'कहो कैसी रही.'

कृष्ण भजनिये ने जख्मी आंखों से राम भजनिये की ओर देखा. वह पहले से ही भरा था, राम भजनिये की शरारतों ने उसे भीतर तक जला दिया. आंखों से मानो अंगारे बरसाते हुए बोला, 'धर्म बेचकर जीतना भी कोई जीतना है. दुहाई तो रामजी की देते हो एवं प्रशंसा मदनगोपाल की करके खाते हो.'

'अरे! भाड़ में जाये तेरो मदनगोपाल? वहां तो ठाकुर साहब के पोते के सम्मान के कारण हम चुप रह गये थे.'

'पूरे गिरगिट हो. मतलब के लिए हज़ार रंग बदल लेते हो. एक हमें देखो हमारा लड़का आज एक सौ तीन डिग्री बुखार में पड़ा मर रहा है लेकिन प्रभु के नाम पर बख़्शीश तक नहीं ली.' कहते-कहते आज की हार एवं पुत्र व्यथा से विकल कृष्ण भजनिये की आंखों में आंसू तैरने लगे.

उसकी आर्द्र आंखें देख रामभजनिया भी कुछ क्षण के लिए मौन हो गया. मन ही मन सोचने लगा, इसे नीचा दिखाकर आज मुझे क्या मिला. ठाकुर साहब ने शायद ठीक ही कहा था — राम हो अथवा कृष्ण दोनों थे तो विष्णु के अवतार ही. आये तो दोनों तारणहार बनकर ही. जाने किस बात पर पुरखे सौ वर्ष पहले लड़े, पीढ़ियों तक में बैर हो गया. फिर आज मैंने इसका हिस्सा क्यों खाया? इसका बच्चा भी तो कहीं हमारा ही वंशधर है.

करुणा विद्युत से भी तीव्रगामी होती है. सोचते-सोचते क्षण भर में रामभजनिये का हृदय करुणा की आंच में पिघल गया. कृष्ण भजनिये के कांधे पर हाथ रखते हुए बोला, 'मुन्ना बीमार है क्या! पहले क्यों नहीं बताया? क्या हम इतने गिर गये हैं कि अपने बच्चों की पीड़ा भी नहीं समझ सकें?' कहते-कहते राम भजनिये ने दो हज़ार रुपये कृष्ण भजनिये के हाथों में रख दिये. कृष्ण भजनिया उसे लौटाता उसके पहले ही उसके हाथों की मुट्ठी कसते हुए बोला, 'अब पीढ़ियों का बैर यहीं समाप्त करो कृष्णे! आगे से हम सदैव साथ-साथ गायेंगे.' कहते-कहते उसने आगे बढ़कर कृष्ण भजनिये को गले से लगा लिया. दोनों की आंखों से गंगा-जमुना बह निकली.

दोनो संयत हुए तो रामभजनिये ने पास ही खड़े शिष्य के गले से पट्टा लगा हारमोनियम लिया, उसे गले में लटकाते हुए सुर साधे, फिर आह्लादित आवाज़ को गुंजायमान करते हुए गाना प्रारंभ किया.

'जग में सुंदर हैं दो नाम,
चाहे राम कहो या श्याम.'

विह्वल कृष्ण भजनिये ने मुखड़ा आगे बढ़ाया, 'बोलो राम राम राम...'

भाव अतिरेक से आर्द्र रामभजनिया ने बांये हाथ को कान पर लगाया फिर दायां हाथ ऊपर उठाकर सुर मिलाये, 'बोलो श्याम श्याम श्याम...'

दोनों के पट्ठे अब दुगने उत्साह से एक साथ ढोलक, मंजीरे एवं चिमटे बजा रहे थे.

सी- १३६, 'आंचल',
कमला नेहरु नगर, प्रथम विस्तार,
जोधपुर (राज.)
मो. ९४१४१३२४८३
मेल : *hariprakashrathi@yahoo.co.in*

राउरकेला, ओड़िशा,
एम. ए. (हिंदी) संबलपुर विश्वविद्यालय, ओड़िशा.

: लेखन :

हिंदी की विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं तथा कई बच्चों की पत्रिकाओं में बाल कहानी, मौलिक तथा अनूदित कहानियां, लेख, समीक्षा एवं साक्षात्कार प्रकाशित. लगभग दो सौ से अधिक ओड़िया से हिंदी कहानियों का निरंतर अनुवाद.

: प्रकाशन :

खिलती पंखुरियां (कहानी संग्रह), नटखट चिंटू (बालकथा संग्रह), शोख गिलहरी (बाल कविता संग्रह) प्रकाशनाधीन. कुछ कहानी-संग्रहों व एक उपन्यास का अनुवाद

: सम्मान :

राष्ट्रीय राजभाषा पीठ, इलाहाबाद द्वारा भारती भूषण सम्मान, हिंदीतर भाषी हिंदी लेखक पुरस्कार योजना के अंतर्गत मौलिक कृति खिलती पंखुड़ियां को राष्ट्रीय सम्मान, ओड़िया और हिंदी भाषा के मध्य सेतु निर्माण हेतु संकल्प संस्थान राउरकेला द्वारा सारस्वत संकल्प शिरोमणि सम्मान, हिंदी कहानि एवं अनुवाद के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु उत्कल मेल सम्मान, कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा सम्मान, अखिल भारतीय विमल- स्मृति कहानी सम्मान, वडोदरा, विशिष्ट बाल साहित्य सेवा पुरस्कार- विजय कुमार महापात्र स्मृति सम्मान

: विशेष :

ओड़िया एवं हिंदी भाषा अध्ययन तथा ओड़िया से हिंदी अनुवाद कार्य में विशेष रुचि, केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा हिंदीतर भाषी हिंदी लेखक पुरस्कार योजना के अंतर्गत चयन समिति में विशेषज्ञ (वर्ष २००७ एवं २००८)

बुझती आंखों की उम्मीद

सुरभि बेहेरा

क़रीब पंद्रह साल बाद प्रमोशन के साथ तबादले की ख़बर सुनते ही हमारा पूरा परिवार काफ़ी ख़ुश दिखलाई पड़ रहा था. दरअसल एक ही शहर में कई वर्षों तक रहने के बाद एक घुटन-सी महसूस हो रही थी. एक तो सरकारी नौकरी और वह भी कृषि विभाग. वैसे तो इस डिपार्टमेंट के कर्मचारी का ज़्यादातर तबादला शहर से दूर गांवों में ही होता है. किंतु इस बार केशव का तबादला पुरी जिले के नयागढ़ शहर में हुआ था. हम लोगों के लिए यह शहर बिल्कुल नया और अजनबी था. फिर भी नये शहर में जाने की ख़ुशी सभी के चेहरे पर साफ़ झलक रही थी.

इस बार केशव को बड़ा-सा सरकारी क्वार्टर भी मिला था. बड़े-बड़े तीन कमरे, बड़ा-सा आंगन और सामने लंबा-चौड़ा बाग़ान. बाग़ान में आम, बेल, सीताफल, अमरूद, पपीता, नीम आदि के बड़े-बड़े पेड़ भी लगे हुए थे. दस-बारह सरकारी क्वार्टरों के मिलने से एक कॉलोनी-सी बन गयी थी. पहली नज़र में ही मुझे मकान पसंद आ गया. हमारे मकान से सटकर ही प्रधान बाबू का क्वार्टर था. उनका परिवार भी हमारे परिवार की तरह ही छोटा और ख़ुशहाल था. उनका क्वार्टर बड़ा ही सुंदर था. शायद उस पूरी कॉलोनी में वही सबसे ख़ूबसूरत क्वार्टर था. उनकी पत्नी बड़ी ही सुशील और मिलनसार थी. दोनों बच्चे कॉलेज़ में पढ़ रहे थे. किंतु हमारे बच्चों से बहुत जल्दी ही घुलमिल गये. पहले ही परिचय में मुझे उस परिवार से एक लगाव-सा हो गया.

नये मकान में आये हुए क़रीब एक सप्ताह हो गया था. बच्चे छोटे होने के कारण सब कुछ अभी तक इधर-उधर बिखरा हुआ था. मेरी छोटी बेटी ऋचा केवल छह महीने की ही थी और बड़ा बेटा ऋषभ पांच साल का. मुझे काम करने के लिए एक आया की सख़्त ज़रूरत थी. मेरी असुविधाओं को महसूसते हुए प्रधान बाबू की पत्नी ने अपनी आया को हमारे यहां काम पर लगवा दिया था. अनजान शहर में इतनी अच्छी काम करने वाली मिल जाने पर मुझे बड़ी राहत मिली. ऋचा को संभालने में

आसानी हो गयी. मिसेज़ प्रधान ऋचा को भी ज़्यादातर अपने पास ही रखतीं. ये सारी सुविधाएं उनके अच्छे स्वभाव के कारण ही मुझे मयस्सर हो पायी थीं. उम्र में मुझसे बड़ी होने के कारण मैं उन्हें दीदी कहकर बुलाने लगी. उनका मायका और ससुराल नज़दीक होने के कारण उनके घर में हमेशा मेहमानों की भीड़ लगी रहती. मैं तो दीदी को देखकर दंग रह जाती कि वे कैसे हंसते-हंसते इतने सारे मेहमानों की सेवा में सुबह से शाम जुटी रहतीं. चाहे कोई भी रिश्तेदार किसी भी वक़्त उनके घर आ जाये, उनके चेहरे पर कभी भी जरा-सी भी शिकन देखने को नहीं मिलती. बल्कि ख़ुशी-ख़ुशी वे उनकी ख़ातिरदारी में लग जातीं.

मेरी पुरानी आदत है कि सुबह सैर से लौटने के बाद टी. वी. पर आ रहे पुराने गीतों के साथ चाय की चुस्की का मज़ा लेना. उस दिन भी सुबह-सुबह मैं टी. वी. ऑन कर सोफ़े पर बैठी हुई चाय पी रही थी. अचानक ऑटो के रुकने की आवाज़ आयी. मैंने खिड़की से बाहर झांककर देखा कि एक सुंदर-सी औरत अपने दो बच्चों के साथ दीदी के क्वार्टर के सामने उतर रही है. शायद उनके पति भी साथ ही थे. मैंने मन ही मन सोचा आज भी दीदी को चैन नहीं.

अगले दिन छुट्टी थी, इसलिए घर के नित्यकर्म से निपट कर और बच्चों को नाश्ता कराने के बाद मैं थोड़ी देर के लिए दीदी से मिलने गयी. वहां जाने पर पता चला कि कटक से उनकी बहन और उनके बच्चे आये हुए हैं. दीदी के बहनोई फॉरेस्ट डिपार्टमेंट के बड़े पदाधिकारी थे. दीदी ने उन लोगों से मेरा परिचय कराया. हट्टा-कट्टा शरीर, दबंग चेहरा और हमेशा ख़ुश मिज़ाज रहने वाले उनके बहनोई ने अपने बच्चों से मेरे पैर छुलवाए. दीदी ने बताया कि उनकी बदली नयागढ़ फॉरेस्ट डिपार्टमेंट में हो गयी है. कुछ दिन यहां रहने के बाद अपने नये क्वार्टर में चले जायेंगे. दीदी ने अपनी छोटी बहन मंजु को आवाज़ लगायी. वह दूसरे कमरे में बिस्तर पर लेटी हुई थी. आते ही उसने दोनों हाथ जोड़कर मुझे नमस्कार किया. मुझे उनके संस्कारी परिवार से मिलकर काफ़ी अच्छा लगा.

उसके बाद मंजु का हमारे घर में आना-जाना लगा रहा. कभी-कभी घंटों आकर मेरे घर में चुपचाप बैठी रहती, एकटक पूरे घर को निहारती रहती. मुझे उसके व्यवहार से अजीब-सा महसूस होता. परंतु मैंने कभी भी दीदी के सामने इस बात का जिक्र भी नहीं किया. मुझे डर था कि कहीं मेरी बातों को सुनकर दीदी कोई ग़लत अर्थ नहीं निकाल लें. मैं बेवजह उन्हें परेशान करना नहीं चाहती थी.

मंजु देखने में बहुत सुंदर थी. गोरा रंग, छरहरा बदन, बड़ी-बड़ी आंखें, उन झील-सी आंखों में उठती हुई अनगिन तरंगें, बातों में मिठास. पर न जाने क्यों कभी-कभी उसकी अजीब-अजीब हरकतों से मैं परेशान हो जाती. कई बार तो मेरी रसोईघर में घुसकर गैस पर रखी हुई पतीली के ढक्कन को उठाकर देखती कि क्या बना हुआ है. उसके बाद बिना कुछ कहे एक प्लेट में निकाल कर खाने बैठ जाती. मैं सब कुछ देखकर भी चुप रह जाती. मन ही मन सोचती दीदी की बहन तो मेरी भी बहन ही हुई. शायद इसी अपनेपन के कारण वह ऐसा करती है.

थोड़े दिनों के बाद वे लोग अपने क्वार्टर में चले गये. उनका क्वार्टर नज़दीक ही था इसलिए दीदी के घर उनका आना-जाना लगा ही रहता. मंजु खाना बहुत स्वादिष्ट बनाती थी. कोई भी रेसिपी बनाने पर वह अपनी दीदी और मेरे लिए ज़रूर लाती. मैं भी तीज-त्योहारों में उसे अपने घर बुलाकर खाना खिलाती. मंजु के पति घूमने के बड़े शौक़ीन थे. ऑफ़िस के बाद जब भी उन्हें छुट्टी मिलती वे अपनी नयी कार में मंजु और बच्चों को साथ लेकर भुवनेश्वर चले जाते. कभी-कभी पुरी भी हो आते. समुद्र की ऊंची-ऊंची लहरों को बांहों में समेटना मंजु को बड़ा रोमांचक लगता. वह अपने पति और बच्चों के साथ काफ़ी ख़ुश थी.

हम लोगों को यहां रहते हुए क़रीब दो साल हो गये थे. अब ऋचा भी स्कूल जाने लग गयी थी. दोनों बच्चों को स्कूल के लिए तैयार कराना और फिर घर का सारा काम जल्दी-जल्दी निपटाना. समय कैसे व्यतीत हो जाता पता ही नहीं लगता. सुबह बच्चों को स्कूल भेजने के बाद मैं भी केशव के साथ साढ़े दस बजे स्कूल पहुंच जाती. फिर भी कभी-कभार देर हो जाती. स्कूल की प्रधानाध्यापिका बहुत अच्छी थीं इसलिए देर से पहुंचने पर भी वे मुझे कभी कुछ नहीं कहतीं. छुट्टी होने पर मैं दोनों बच्चों को साथ लेकर घर आ जाती. केशव को ऑफ़िस के काम से हमेशा बाहर जाना पड़ता था. इसलिए चाह कर भी वे हमें समय नहीं दे पाते. बच्चों को पढ़ाना, घर संभालना, और फिर स्कूल के बच्चों की कॉपियां जांचना. कई बार तो देर रात तक कॉपियां जांचनी पड़ जातीं. सुबह उठने पर देर हो जाती तो केशव ही चाय की प्याली हाथ में लिये मुझे जगाते. इतनी व्यस्तताओं

के बीच मंजु के घर आना-जाना लगभग बंद ही हो गया था. दीदी के साथ बातें करने का भी समय नहीं मिल पाता था.

वैसे मंजु का क्वार्टर स्कूल जाने वाले रास्ते में ही पड़ता था. उस दिन भी उसी रास्ते से स्कूल जाते वक़्त हठात मेरी नज़र उस ओर गयी. मैंने देखा उसके क्वार्टर के बाहर कई कारें खड़ी हैं और आस-पास बहुत भीड़ लगी हुई है. मुझे स्कूल जाने की हड़बड़ी थी इसलिए उस वक़्त मैं वहां रुक नहीं पायी. परंतु स्कूल में भी मन नहीं लग रहा था. मैंने प्रधानाध्यापिका से कहकर आधे दिन की छुट्टी ले ली. घर आकर मैंने अपना बैग रखा और केवल एक गिलास पानी पीकर सीधे दीदी के घर चली गयी.

दीदी ने बताया कि पिछले दो साल से मंजु की तबीयत ठीक नहीं है. उसे बीच-बीच में दौरे पड़ने लगते हैं और वह घर के सामानों को इधर-उधर फेंकने लगती है, यहां तक कि अपने बच्चों को भी पीटने लगती है. उस वक़्त डॉक्टर को बुलाकर तुरंत इंज़ेक्शन देने के बाद ही वह शांत होती है. आज तक जब भी उसे दौरे पड़े हैं, उसके पति घर पर ही रहते थे इसलिए किसी को कुछ भी पता नहीं लग पाता था. लेकिन आज जब वे टूर पर गये हुए थे तभी उसे दौरा पड़ गया. मुझे पप्पू (मंजु के बेटे) ने फ़ोन करके बताया. मैं जब उसके घर गयी तो देखा बाहर भीड़ लगी हुई थी. मैं भीड़ को चीरती हुई अंदर गयी तो देखा मंजु अपने आपे से बाहर थी. मुझे उसे कंट्रोल करना बहुत मुश्किल हो गया था. किसी तरह उसके पति को बुलाया. कई लोगों ने धर-पकड़ कर जब उसे डॉक्टर से इंजेक्शन दिलवाया तभी वह शांत हुई. अब वह पूरे दिन चुपचाप सोयी रहेगी, और उठने के बाद फिर से नॉर्मल हो जायेगी.

दीदी की ज़ुबान से पूरी बातें सुनने के बाद मैं एक बुत की तरह चुपचाप खड़ी रह गयी. मुझे इस बात की थोड़ी-बहुत आशंका तो पहले से ही थी पर बात इतनी बढ़ गयी है यह मैं नहीं जनती थी. दीदी के चेहरे को देखकर ही अंदाज़ा लगाया जा सकता था कि आज सुबह से वे काफ़ी परेशान रही होगीं. उनकी परेशानी को दूर करने के लिए मैंने तुरंत एक कप चाय बनाकर दीदी को दी. चाय पीते वक़्त दीदी ने बताया कि मंजु की हालत पहले ऐसी नहीं थी. वह अपने पति और बच्चों के साथ बहुत ख़ुश रहा करती थी. शादी के कुछ दिनों बाद तक तो वह कभी-कभार मायके आ भी जाती थी, परंतु धीरे-धीरे उसका मायके आना भी बंद हो

गया था. हम लोगों ने सोचा शायद बच्चे छोटे हैं इसलिए नहीं आ पाती है. फिर जब बच्चे बड़े हो गये तो शायद उनके स्कूल और गृहस्थी के जंजाल में फंसकर वह कहीं भी आना-जाना नहीं कर पाती थी. जब भी कहीं जाना होता अपने पति के साथ ही जाती. दरअसल, मेरे बहनोई उससे बेहद प्यार करते थे. यही कारण था कि अपनी नज़रों से उसे कभी अलग नहीं कर पाते. शुरू-शुरू में तो मंजु को भी पति का प्यार बहुत आकर्षित करता. लेकिन जब बच्चों के स्कूल और पति के ऑफ़िस चले जाने के बाद वह पूरे दिन बंद कमरे के चारदीवारी में क़ैद हो जाती थी अपने को बहुत अकेला महसूस करती. फॉरेस्ट ऑफ़िसर के बंगले के आस-पास कोई क्वार्टर भी नहीं था, जिससे वह अपने मन की बात किसी से कह सके. शायद यही वजह थी कि वह अंदर ही अंदर घुटने लगी और धीरे-धीरे उसका मानसिक संतुलन भी बिगड़ने लगा. लेकिन उसके पति को इस बात का अहसास बहुत दिनों बाद हुआ. और आज हालत यह है कि डॉक्टर ही उसे काबू में रख पाते हैं.

मंजु की पूरी कहानी सुनने के बाद मुझे बहुत दुख हुआ. घर आकर मैं चुपचाप रसोईघर की ओर चली गयी. जल्दी से रात के लिए रोटी सब्ज़ी बनाकर हॉटकेस में रख दी और सोने चली गयी. मंजु के बारे में सोच-सोच कर मुझे भी एक तनाव-सा हो गया था. उस दिन बच्चों को खाना भी

केशव ने ही खिलाया. उनके सो जाने के बाद केशव ने मुझे धीरे से जगाया. थोड़ी देर आराम करने से मन काफ़ी हद तक तनावमुक्त हो गया था. उस रात हम लोग जल्दी ही खाना खाकर सो गये. न केशव ने कुछ पूछा और न मैंने ही कुछ कहा.

रात नींद अच्छी नहीं होने के कारण सुबह सिर दर्द से फटा जा रहा था. बच्चों की परीक्षा नज़दीक थी इसलिए स्कूल से छुट्टी लेना भी संभव नहीं था. अत: घर के काम जल्दी निपटा कर मैं स्कूल के लिए निकल गयी. उस दिन क्लास भी बहुत अधिक लेने पड़े. सीढ़ियों से ऊपर-नीचे होकर मैं पूरी तरह थक चुकी थी. पूरे शरीर में दर्द हो रहा था. घर लौटते वक़्त रास्ते में ही दीदी से भेंट हो गयी. दीदी ने मुझे देखते ही पूछा — 'क्या हुआ तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है क्या?'

— 'हां, सुबह से ही सिर बहुत भारी लग रहा है. कुछ भी काम करने की इच्छा नहीं हो रही है. क्या करूं स्कूल जाना बहुत ज़रूरी था इसलिए चली गयी.' इतना कहकर मैं घर आ गयी.

घर पहुंचकर ताला खोल ही रही थी कि पीछे-पीछे दीदी भी आ गयीं. आते ही मेरे सिर पर हाथ रखते हुए बोली — 'अरे तुम्हें तो बुखार है. यह सब थकान का ही नतीज़ा है. तुम बिस्तर पर चुपचाप लेटी रहो. मैं तुम्हारे लिए जूस लेकर आती हूं तुम्हें अच्छा लगेगा.'

गाढ़ा-सा एक ग्लास ऑरेंज़ जूस पीने के बाद मुझे सचमुच अच्छा लगा. सिर में दर्द होने कारण मैं थोड़ी देर के लिए सोना चाहती थी. मना करने पर भी दीदी ने मेरे सिर, कमर और पीठ पर तेल की मालिश की. एक-दो घंटे सोकर उठने के बाद मुझे काफ़ी हल्का महसूस हुआ. उस दिन दीदी ने ही सभी को खाना बनाकर खिलाया. सचमुच दीदी के रूप में मुझे मां मिल गयी थी. इतनी परेशानियों के बावजूद वह मेरे लिए कितना कुछ कर जाती थीं. वर्ना आजकल तो लोग अपनों के लिए भी समय नहीं निकाल पाते.

इस बीच मंजु की तबीयत ठीक होने जाने पर वह शाम के वक़्त कभी-कभार मेरे घर भी आ जाया करतीं. मुझे भी उससे एक हमदर्दी-सी हो गयी थी. अब उसके घर आने पर मुझे ग़ुस्सा नहीं आता. बल्कि कोई भी अच्छी चीज़ अपने हाथों से प्लेट में निकालकर उसे खाने के लिए देती. वह भी बच्चों की तरह बड़े प्यार से उसे खा लेती.

बच्चों की परीक्षा ख़त्म होने के बाद सभी को नानी के घर जाने की इच्छा थी. मैं भी क़रीब दो-तीन साल से मां के घर नहीं जा सकी थी. इसलिए छुट्टी होते ही हम लोग सपरिवार राउरकेला चले गये. बच्चे अपने नाना-नानी से मिलकर काफ़ी ख़ुश थे, और मुझे भी दैनिक दिनचर्या से मुक्ति पाने का एक अच्छा बहाना मिल गया था. केशव एक-दो दिन साथ रहने के बाद वापस चले गये थे. बच्चों को नाना-नानी के घर से लौटने की इच्छा ही नहीं हो रही थी, इसलिए बीस-पच्चीस दिन रहने के बाद ही मैं नयागढ़ लौट पायी.

घर पहुंचते ही पता लगा कि दो दिन पहले ही मंजु के पति का देहांत हो गया था. अचानक यह ख़बर सुनकर मैं एकदम सन्न रह गयी. तबीयत तो मंजु की ख़राब रहती थी फिर हठात उन्हें क्या हो गया? मैं कुछ और सोच पाती इससे पहले ही केशव ने मुझसे कहा — मंजु ने ही अपने पति को मार डाला. यह तो और भी अधिक चौंकाने वाली ख़बर थी. आख़िर मंजु को ऐसा क्या हो गया कि अपने ही हाथों अपने परिवार की बलि चढ़ा दी? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था इसलिए मैं बच्चों को केशव के पास छोड़कर उसी वक़्त दीदी के घर चली गयी. मेरे मन में हज़ारों सवाल उठ रहे थे जिसका जवाब केवल वहां जाकर ही मिल सकता था.

दीदी बाहर बरामदे में ही उदास बैठी हुई थी. मुझे देखते ही गले लगाकर रो पड़ीं. जैसे किसी अपनों को देखकर वर्षों के थमे हुए आंसू बरबस ही निकल पड़े हों. मैं मन ही मन सोचने लगी अगर दीदी की हालत ऐसी है तो बेचारी मंजु पर क्या बीत रही होगी? कोई जानबूझ कर तो अपने हंसते-खेलते परिवार को नहीं उजाड़ता. मैं मंजु से मिलने अंदर गयी. वह बिना किसी टेंशन के आराम से बिस्तर पर सो रही थी. जैसे उसके जीवन में कोई घटना ही नहीं हुई हो. मुझे उसका यह रूप बड़ा अज़ीब लगा. मैंने दीदी से पूछा, 'आख़िर यह सब कैसे हो गया? अभी महीने भर पहले तो मंजु की हालत एक तरह से ठीक ही थी फिर अचानक यह क्या हो गया?'

— 'मंजु बाहर से देखने में तो ठीक ही लगती है पर अंदर ही अंदर वह एक मानसिक तनाव से गुज़र रही है. जब तक दवा खाती ठीक रहती. लेकिन जिस दिन दवा नहीं खाती उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता. जिस दिन

उसके पति टूर पर चले जाते उस दिन उसे दवा नहीं मिल पाती. क्योंकि वह कभी ख़ुद लेकर दवा नहीं खाती थी. शायद यही वजह थी कि उसकी तबीयत इस बीच ज़्यादा ख़राब हो गयी हो.

तुम लोगों के जाने के बाद उसे दो-तीन बार दौरे पड़े. उस वक़्त उसे संभाल पाना बहुत मुश्किल हो गया था. डॉक्टर ने कहा इलेक्ट्रिक शॉक ही इसका इलाज है. हर महीने कम से कम चार बार शॉक देने से वह जल्द ठीक हो जायेगी. यहां ये सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं इसलिए उसे शॉक देने के लिए कटक जाना पड़ता था. हर सात दिन बाद मेरे बहनोई उसे कार में बिठाकर कटक ले जाते और वहीं उसे इलेक्ट्रिक शॉक दिया जाता. मंजु को उस वक़्त बहुत तकलीफ़ होती थी, पर उसे काबू में रखने के लिए इसके अलावा और कोई चारा भी नहीं था. वह कटक जाने के लिए कभी राजी नहीं होती थी. हमेशा वहां नहीं जाने के लिए ज़िद कर बैठती थी. वह यह नहीं समझ पाती कि उसका पति उससे इतना अधिक प्यार करता था कि वह कैसे जल्द से जल्द ठीक हो जाये इसके सिवा और कुछ नहीं सोच पाता. पैसे चाहे जितने ख़र्च हो जायें, परेशानियां चाहे जितनी उठानी पड़ें किंतु मंजु जल्द से जल्द ठीक हो जाये. बस केवल यही चिंता उन्हें हमेशा लगी रहती. उन्होंने टूर पर जाना भी बंद कर दिया था.

जून का महीना था गरमी बहुत तेज़ थी. एक दिन दोपहर को मंजु अपने परिवार के साथ टहलते हुए मेरे घर आयी. उस दिन वह काफ़ी ख़ुश थी. आते ही मुझसे कहने लगी — 'दीदी मां के घर जाने की इच्छा हो रही है. इन्होंने मुझसे वायदा भी किया है कि मुझे जाने से नहीं रोकेंगे. यदि तुम भी साथ चलोगी तो कल सुबह की बस से निकल पड़ेंगे. मुझे मंजु की बात पर भरोसा नहीं था इसलिए मैंने अपने बहनोई से उस बात की सच्चाई जाननी चाही. उन्होंने बताया कि उसे ख़ुश रखने के लिए ही उसने हामी भर दी थी. दरअसल, उसे तो हर हफ़्ते शॉक देने के लिए कटक जाना पड़ता है. इस हालत में वह कहां जा पायेगी. पता नहीं मंजु के कान में यह बात कैसे चली गयी. उसके बाद वह ग़ुस्से से उसी वक़्त गांव जाने के लिए निकल पड़ी. हम लोगों ने उसे समझाने की कोशिश की किंतु वह किसी की भी बात मानने के लिए तैयार नहीं थी. मैंने बहनोई से कहा भी कि आज उसे यहीं रहने दीजिए, कल उसे आपके यहां छोड़ आऊंगी. लेकिन उन्होंने मेरी बात नहीं मानी और कहने लगे — 'नहीं दीदी, बेकार में आपको भी परेशान होना पड़ेगा. मैं उसे अपने तरीक़े से समझाने की पूरी कोशिश करूंगा. लेकिन अब मैं सोचती हूं कि अगर उस दिन मेरे बहनोई ने मेरी बात मान ली होती तो आज उनके साथ यह हादसा नहीं हुआ होता.

— 'लेकिन उस दिन आख़िर ऐसा क्या हो गया?' मैं पूरी बात जानने के लिए बेचैन हो गयी थी.

उस दिन घर पहुंचने के बाद पता नहीं मंजु के दिमाग़ में कौन-सा भूत सवार हो गया था. उसने बच्चों को स्टडी रूम में भेज दिया और ख़ुद रसोईघर की तरफ़ चली गयी. उसके पति को लगा कि शायद अब मंजु का मूड ठीक हो गया है. वह रात के लिए कुछ बनाने के लिए ही किचन में घुसी है. यही सोचकर उन्होंने कपड़े बदले और थोड़ी देर आराम करने के लिए बिस्तर पर लेट गये. गर्मी और थकान की वजह से उन्हें नींद आ गयी. इस बीच मंजु बड़ी-सी पतीली में खौलता हुआ पानी ले आयी और अपने पति के खुले हुए बदन पर डाल कमरे से बाहर निकल गयी. उनके मुंह से भयानक चीख़ निकल पड़ी. वे दर्द से छटपटाने लगे. पप्पू के फ़ोन करने पर मैं दौड़ती हुई वहां पहुंची. उस दृश्य को याद कर मैं अब भी कांप उठती हूं. एक ओर मेरे बहनोई दर्द और जलन से छटपटा रहे थे और दूसरी ओर मंजु पागलों की तरह बड़बड़ाती जा रही थी — 'मुझे और कटक ले जाओगे, इलेक्ट्रिक शॉक दिलवाओगे... मां के घर ले जाने के बहाने कटक ले जाओगे.'

तुरंत उन्हें एम्बुलेंस पर कटक मेडिकल हॉस्पिटल लाया गया. अच्छे से अच्छे डॉक्टर को दिखाया गया. दो दिन तक एअर कंडीशंड रूम में रखकर हर तरह का इलाज करवाया गया किंतु गरमी की वजह से उन्हें बेहद जलन होती थी. उनकी चीख़ से कलेजा दहल उठता था. कई दिन गुज़रने पर आशा बंधने लगी कि शायद वे धीरे-धीरे ठीक हो जायेंगे. परंतु एक दिन अचानक डॉक्टरों ने देखा कि उनके पूरे शरीर में सूजन आ गयी है और उनके घाव भी पकने लग गये हैं. डॉक्टर को लगा कि ऐसी स्थिति में उनका ठीक हो पाना मुश्किल है. लगातार सात दिनों तक ज़िंदगी और मौत के बीच जूझते हुए अचानक एक दिन सुबह उनकी सांसें थम गयीं.

इतने दिनों तक हॉस्पिटल में एडमिट रहने के बावजूद

मंजु ने एक बार भी उनसे मिलने की ज़िद नहीं की. मौत की ख़बर सुनकर भी उसे कोई सदमा नहीं लगा. अख़बार में भी ख़बर छपी थी. जब मंजु को अख़बार दिखाकर मैंने पूछा — 'देखो तुम्हारे पति के बारे में क्या निकला है! तुमने यह क्या कर दिया मंजु? लेकिन एक पागल से क्या उम्मीद रखी जा सकती थी?' उसने कहा — 'मैंने कुछ नहीं किया है. जो हुआ अच्छा ही हुआ. अब मुझे कोई इलेक्ट्रिक शॉक दिलाने कटक तो नहीं ले जायेगा...'

उनकी बातें सुनने के बाद मुझे मंजु पर बहुत ग़ुस्सा आया. उसने अपने इस पागलपन से अपनी पूरी ज़िंदगी बर्बाद कर दी थी. शायद उसकी क़िस्मत में पति का सुख इतने ही दिनों का था. वर्ना कोई भी पत्नी अपने ही हाथों अपने पति की हत्या कर अपना ही संसार नहीं उजाड़ देती.

चूंकि यह एक हत्या का मामला बन गया था इसलिए पुलिस ने उसके घर को भी सील कर दिया था. घर के सारे फ़र्नीचर, नगद रुपये-पैसे, गहने जेवर, बैंक बैंलेंस सब कुछ ससुराल वालों ने अपने नाम कर लिये थे. यहां तक कि उसके दोनों बच्चे भी मंजु से नफ़रत करने लगे थे. वे भी अपनी मां को ऐसी हालत में छोड़कर अपने चाचा के घर रहने लग गये थे. पति के साथ-साथ मंजु ने अपना पूरा परिवार भी खो दिया था. उसकी ज़िंदगी में इतना बड़ा तूफ़ान आने के बावजूद उसके दिमाग़ में कोई असर नहीं पड़ा था. उसे किसी भी प्रकार के गम का गुमान नहीं था. बल्कि और भी शांति से वह अपनी दीदी के घर में चुपचाप पड़ी रहती. जब जो मिलता खा लेती और सो जाती. मर्डर केस होने के कारण उस पर मुक़दमा चला, परंतु मेंटल पेशेंट होने की वजह से उसे बरी कर दिया गया.

दीदी के घर रहते समय भी कभी-कभी वह उल्टी-सीधी हरकतें करती, लेकिन दीदी उसे किसी तरह समझा-बुझा कर मना लेती. धीरे-धीरे उसने समय पर दवा लेना भी बंद कर दिया. दीदी के मां-बाप उम्र की उस दहलीज पर थे जहां एक पागल को संभाल पाना बहुत मुश्किल था. फिर भी वे कभी-कभार गांव से आकर मंजु की देखभाल करते. अब दीदी भी उसकी हरकतों से तंग आ गयी थीं. कुछ दिनों बाद मंजु अपने मां-बाप के साथ उनके गांव चली गयी. दीदी ने भी बहुत दिनों तक उसकी कोई खोज ख़बर नहीं ली. कार्य की व्यस्तताओं के बीच धीरे-धीरे हम लोग भी मंजु को भूलते गये.

इस बीच दीदी के घर मेरा आना-जाना भी बहुत कम हो गया था. मुझे बच्चों और स्कूल से फ़ुर्सत ही बहुत कम मिलती. जब कभी समय मिलता तो मैं चुपचाप घर पर रहना ही ज़्यादा पसंद करती. दीदी भी किसी न किसी बहाने हमेशा मायके चली जातीं. क़रीब पांच-छह महीने बाद एक दिन अचानक दीदी मेरे घर आयीं. उनके चेहरे से ही वह बहुत दुखी दिखलाई पड़ रही थीं. दीदी ने बताया कि मंजु की हालत अब बिल्कुल ठीक नहीं रहती. गांव में उसने सभी को परेशान कर रखा है. भरी दोपहरी में पूरे गांव में घूमती रहती है. कभी कोई कपड़े जला डालती, तो कभी किसी को बिना वजह गाली देती रहती. उसके पति जीवित थे तो उसे दवा वग़ैरह देकर काबू में रख लेते थे. अब तो न ही उसके नाम कुछ पैसे हैं और न ही मां-बाबूजी को इतनी ताकत है कि उसे कटक ले जाकर उसका इलाज करवा सकें. अभी थोड़ी देर पहले गांव से एक व्यक्ति आया था उसने बताया कि कल दोपहर को न जाने मंजु पर कैसा दौरा पड़ा कि उसने अपने ही ऊपर गरम पानी डाल लिया. उसका आधे से अधिक शरीर जल चुका है. उसे गांव के सरकारी अस्पताल में भर्ती कर दिया गया है. मां ने मुझे जल्द से जल्द बुलाया है इसलिए मैं अभी तुरंत बस पकड़कर गांव जा रही हूं. तुमसे बस इतना कहने आयी थी कि कुछ दिनों के लिए मेरे बच्चों का ख़्याल रखना. सब कुछ तुम पर छोड़े जा रही हूं.

मैंने हामी भरते हुए कहा — 'यह भी कोई पूछने वाली बात है, आप न भी कहतीं तो मैं उनकी देखभाल करती. आप इस बारे में बिल्कुल भी चिंता न करें. मैं एक-दो दिन के लिए स्कूल से छुट्टी ले लूंगी. यदि हो सका तो मंजु को देखने आपके गांव भी जाऊंगी.' मैंने दीदी को ढ़ाढ़स बंधाते हुए कहा.

दो-तीन दिन तक दीदी के नहीं लौटने पर मुझे भी चिंता होने लगी. न जाने मंजु की हालत कैसी होगी? गांव के सरकारी अस्पताल में अच्छे डॉक्टर भी नहीं रहते हैं फिर उसका इलाज कैसे होता होगा? यही सोचकर मुझे भी उसे देखने की इच्छा होने लगी. दूसरे दिन सुबह बच्चों को स्कूल भेजने के बाद मैं केशव के साथ मंजु को देखने के लिए उसके गांव के सरकारी अस्पताल पहुंच गयी.

अस्पताल में मरीज़ों के लिए बेड भी बहुत कम थे. जिसे जहां जगह मिल गयी थी वहीं पड़े हुए थे. मैंने अपने जीवन में मरीज़ों की ऐसी दुर्दशा कभी नहीं देखी थी. थोड़ी

दूर जाने के बाद बरामदे पर बैठी हुई दीदी दिखलाई पड़ीं. वहीं पास ही ज़मीन पर मंजु सोयी हुई थी. मैं देखकर ही समझ गयी कि इसे भी कहीं बेड नहीं मिला होगा. उसकी हालत इतनी दर्दनाक थी कि देखकर ही मन सिहर उठा.

मुझे देखती ही मंजु के मुरझाये हुए चेहरे पर जिज्ञासा की कुछ रेखाएं उभर आयीं — 'आप यहां? बच्चे कैसे हैं, उन्हें भी साथ ले आतीं.' मैंने उसकी बातों का कोई जवाब न देकर उससे पूछा — 'तुमने यह क्या कर दिया मंजु! अपने साथ-साथ पूरे परिवार को क्यों कष्ट दे रही हो?' वह उसी तरह कहने लगी — 'कुछ दिन पहले सपने में मेरे पति ने मुझे अपने पास बुलाया था इसलिए मैं उनके पास जाना चाहती हूं. वे कह रहे थे — उन्हें मेरे बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता. अकेलापन बर्दाश्त नहीं होता. इसीलिए मैं उनके पास बड़ी उम्मीद से उसी रास्ते जा रही हूं, जिस रास्ते वे गये हैं. कहीं दूसरे रास्ते से गयी तो वे मिलें कि न मिलें कौन जाने? उसकी मासुमियत भरी बातों को सुनकर उस पर दया आ रही थी. दीदी ने बताया कि उसके शरीर की पूरी चमड़ी उधड़ गयी है. डॉक्टर ने कपड़े पहनने से भी मना किया है. केवल शरीर को ढंकने के लिए ऊपर से कपड़ा डाल दिया गया है. शरीर के घाव भी पकने लगे हैं. मैंने देखा उसकी मसहरी के चारों ओर मक्खियां भिन-भिन कर रही हैं. चूंकि उसने अपने सिर के ऊपर से गरम पानी डाल दिया था इसलिए उसके बाल भी काट दिये गये थे. उसके सुंदर चेहरे के साथ उसके लंबे घुंघराले बाल भी नहीं रहे. ईश्वर भी अपने ही बनाये हुए सृजन के साथ कैसे-कैसे खेल खेलता है. मुझे वहां ज़्यादा देर रुकना ठीक नहीं लगा इसलिए जल्दी वापस आ गयी.

इन दो-तीन सालों में मंजु की ज़िंदगी में कई परिवर्तन आये. पर आज सरकारी अस्पताल में मंजु की दयनीय अवस्था को देखकर उसके बीते दिन याद आ गये. अगर आज उसके पति जीवित होते तो वह किसी अच्छे हॉस्पिटल में रहती, बड़े-बड़े डॉक्टर उसका ट्रीटमेंट कर रहे होते. लेकिन उसने तो अपने आशियाने को ख़ुद उजाड़ा था. अब उसे इस हालत में कौन उबारेगा? सबकी नज़र अब उसकी मौत पर ही टिकी हुई थी. शायद, मौत ही उसे इस पीड़ा से मुक्ति दिला पायेगी? यही सोचकर उसके मां-बाप ने मंजु की ओर से मुंह मोड़ लिया था. लेकिन दीदी ने अब भी अपनी उम्मीद नहीं छोड़ी थी. दिन-रात सेवा में लगी हुई थीं. शायद उसके घाव ठीक हो जायें और उसकी छोटी बहन पुन: उसके साथ रहने के लिए आ जाये...

क़रीब पंद्रह-बीस दिन बाद दीदी गांव से लौटीं. उनका शरीर सूखकर कांटा हो गया था. चेहरे का रंग काला पड़ गया था. उन्हें देखकर लग रहा था वे ख़ुद बीमार हो गयी हैं. मैंने उनके पास जाकर सबसे पहला सवाल पूछा — 'दीदी, मंजु कैसी है?'

'मंजु!... मंजु तो तुम्हारे आने के तीसरे दिन ही अपने पति के पास चली गयी. वह रोज़ एक ही बात रटती रहती थी कि उन्हें अकेलापन अच्छा नहीं लगता है... फिर मैं यहां उनके बिना अकेली क्यों रहूं. उनके सिवा कोई तो मेरा नहीं रहा... न मां न बाप... न बाल-बच्चे सभी तो मुझसे नफ़रत करने लगे हैं... बस एक वे ही हैं जो मुझसे अब भी इतना प्यार करते हैं... रोज़ बुलाते हैं... फिर मैं यहां कैसे रहूं... तुम्ही बताओ दीदी, मैं यहां क्यों रहूं... किसके लिए रहूं?' इसी तरह न जाने क्या-क्या हमेशा बड़बड़ाती रहती. उस दिन रात के क़रीब दो बजे अचानक मेरी नींद टूटी तो देखा उसकी बड़बड़ाहट शांत हो चुकी थी. पता नहीं उसके पति कब आये और उसे अपने साथ लेकर चले गये.' इतना कहकर दीदी फफक-फफक कर रोने लगीं.

मेरी आंखों के सामने मंजु का निरीह चेहरा कौंध गया. वही चेहरा जो मेरे घर में अधिकार के साथ स्वयं पतीली से कुछ निकालकर खाने लगता था.

'स्वरांजली', गड़ासाही, पोस्ट-जांला, खोरधा (ओड़िशा), भुवनेश्वर-७५२०५४
मो. : ९४३८६२१५१०

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

सुशांत सुप्रिय की कविताएं

कल रात मेरे सपने में

कल रात मेरे सपने में
गांधारी ने इंकार कर दिया
आंखों पर पट्टी बांधने से,

एकलव्य ने नहीं काटा
अपना अंगूठा द्रोण के लिए,

सीता ने मना कर दिया
अग्नि-परीक्षा देने से,

द्रौपदी ने नहीं लगने दिया
स्वयं को जुए में दांव पर,

पुरु ने नहीं दी
ययाति को अपनी युवावस्था,

कल रात
इतिहास और 'मिथिहास' की
कई ग़लतियां सुधरीं
मेरे सपने में.

कोई और

एक सुबह उठता हूं
और हर कोण से
ख़ुद को पाता हूं अजनबी,

आंखों में पाता हूं
एक अजीब परायापन,

अपनी मुस्कान
लगती है न जाने किसकी?

बाल हैं कि
पहचाने नहीं जाते,

अपनी हथेलियों में
किसी और की रेखाएं पाता हूं,

मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि
ऐसा भी होता है,

हम जी रहे होते हैं
किसी और का जीवन

हमारे भीतर
कोई और जी रहा होता है.

कैसा समय है यह

कैसा समय है यह?
जब हल कोई चला रहा है,
अन्न और खेत किसी का है,
ईंट-गारा कोई ढो रहा है,
इमारत किसी की है,
काम कोई कर रहा है,
नाम किसी का है.

कैसा समय है यह
जब भेड़ियों ने हथिया ली हैं
सारी मशालें,
और हम निहत्थे खड़े हैं,

कैसा समय है यह
जब भरी दुपहरी में अंधेरा है
जब भीतर भरा है
एक अकुलाया शोर
जब अयोध्या से बामियान तक
सीरिया से अफ़ग़ानिस्तान तक
बौने लोग डाल रहे हैं
लंबी परछाइयां.

ए-५००१, गौड़ ग्रीन सिटी,
वैभव खंड, इंदिरापुरम,
गाज़ियाबाद-२०१०१४ (उ. प्र.)
मो. : ८५१२०७००८६
ईमेल : sushant1968@gmail.com

झरता हुआ मौन

डॉ. अमिता नीरव

१ मार्च, उज्जैन;
एम. ए., एम. फिल.
(राजनीति-विज्ञान),
ज्यां पॉल सार्त्र और अल्बेयर कामू के अस्तित्ववादी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर पीएच. डी.
: प्रकाशन :
हंस, पहल, नया ज्ञानोदय, बया, परिकथा, पाखी, किस्सा, कथाक्रम, हमारा भारत, संचयन आदि पत्रिकाओं में कहानी का प्रकाशन.
विभिन्न अख़बारों में सम-सामयिक विषय पर लेख और ब्लॉग्स का प्रकाशन.
अन्य :
ब्लॉग्स और कविताओं का आकाशवाणी पर प्रसारण, तुम जो बहती नदी हो!- कहानी-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य.
: संप्रति :
इंदौर से प्रकाशित दैनिक अख़बार नई दुनिया के फ़ीचर विभाग से संबंद्ध.

बहुत दिनों बाद एफबी अलर्ट आया था. दिन भर की व्यस्तता के बाद जब अल्पना ने शाम को अपना अकाउंट लॉग-इन किया तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था. आज से छह महीने बाद यूनिवर्सिटी की एलुमनी मीट की पोस्ट की टैगिंग थी, उसके नाम. वाव... आख़िरकार... यूनिवर्सिटी को अपने स्टूडेंट्स की याद तो आयी. इसी बहाने उसने सबके एफबी पेज़ेस विजिट किये... कुछ के पेज़ेस पर ये पोस्ट नज़र आयी और कुछ के नहीं... इनमें समिधा भी थी. उसकी सबसे प्यारी दोस्त, उसे याद आया कि कितने महीनों से उससे बात नहीं हो पायी. उसने उसका पेज़ खंगाला... लगभग ८ महीने पहले अपडेट किया गया था. ८ महीने में उसने कोई अपडेट नहीं किया है... न किसी की पोस्ट, न लिंक, न अपनी पोस्ट, न विडियोज़, न फ़ोटो... पोस्टर और न ही कोई अपनी पोस्ट... कौन-सी दुनिया में है आजकल?

उसने अपने व्हॉट्स एप अकाउंट में भी उसका लास्ट सीन देखा... वो भी लगभग इतना ही पुराना नज़र आया. कई महीनों से उससे बात तक भी नहीं हुई है... आज शाम के एंगेजमेंट्स टटोले उसने... बिल्कुल फ्री है आज शाम तो वह, डिनर के बाद समिधा को फ़ोन करेगी. लेकिन एकबारगी उसे यह भी लगा कि उसने समिधा को फ़ोन करने के लिए याद किया, कभी समिधा ने उसे इस तरह से याद किया है? उसने ख़ुद को एक-बार फिर से टटोला... कहीं कोई विषबीज तो वो वहां नहीं छोड़ आयी है. ठीक है कि वो उसकी कॉलेज़ के ज़माने की दोस्त है, लेकिन अब तो रिश्ता भी बदल गया है. कहीं अमोघ के उन दोनों के बीच आने से कोई गड़बड़ तो नहीं पैदा हो रही है. कहीं ऐसा तो नहीं है कि पॉवर-स्ट्रगल जैसा महसूस कर रही है वो... अमोघ को लेकर. एक तरफ़ बहन, दूसरी तरफ़ लवर और फिर वाइफ़... उसने थोड़ी देर इस विचार को चुभलाया. फिर चुइंगम की तरह थूक दिया. यदि समिधा को ऐसा लगे भी तो वह उसे ठीक कर लेगी. आख़िर हम दोनों सबसे अच्छी दोस्त हैं. हालांकि पहली बार जब उसने ये सब महसूस किया था तो बहुत उद्वेलित हुई थी, फिर रात भर में ही उसे इस विचार ने ख़ुशी से भर दिया था, कि उसकी सबसे अच्छी दोस्त हमेशा उसके

नेटवर्क में रहेगी, यदि ऐसा होता है तो. क्योंकि अमोघ की फ़ीलिंग जानने के बाद भी समिधा की फ़ीलिंग जानना अभी बाक़ी है और वो सबसे ज़्यादा अहम है.

वो भी इस तरह से कि अमोघ ने ख़ुद अल्पना का बर्थडे प्लान किया था. उसकी बर्थडे पार्टी सरप्राइज़ थी, और इस सरप्राइज़ में हिस्सेदार थी. सारी तैयारी उसी ने की थी, अल्पना को याद आ रहा है कि उसके दो दिन पहले से समिधा और अमोघ दोनों ही ग़ायब रहते थे. उन दिनों मोबाइल फ़ोन तो हुआ नहीं करते थे, लेकिन उसे समिधा पर ग़ुस्सा आता रहा था. अल्पना ने ये तो कभी सोचा ही नहीं था कि अमोघ समिधा को साथ लेगा. क्योंकि बिल्कुल शुरुआत में भाई उसके प्रति बड़ा इन्डिफरेंट-सा ही था. धीरे-धीरे जब अल्पना और समिधा में घनिष्ठता बढ़ी तभी अमोघ का रुचि समिधा में जागी थी. और उस शाम... पार्टी के बाद जब समिधा को घर छोड़ने की बारी आयी तो और धीरेन ने कहा कि वह समिधा को छोड़ आएगा. तो अमोघ ने उसे इशारे से इंकार किया. इत्तफ़ाक से अल्पना ने उसे इशारा करते और धीरेन को मुस्कुराते देख लिया था. उस वक़्त समिधा वहां नहीं थी. जब उसने अमोघ की आंखों में झांका था, तब उसकी अनुनय करने से अल्पना के मन में एक मिश्रित किस्म का भाव पैदा हुआ था. एक ही क्षण में उसके भीतर धोखा हो जाने जैसा विचार आया था. वो समझ नहीं पा रही थी, उसे कौन छीनता हुआ लगा था... अमोघ या फिर समिधा... उस रात बर्थडे पार्टी का खुमार चढ़ ही नहीं पाया था. कोई खलिश... कोई खराश रात भर टीसती रही थी... फिर एकाएक अल्पना ने ख़ुद से ही सवाल कर डाला था... 'तू किससे नाराज़ है?'

और ख़ुद ही उलझ भी गयी थी. क्या अमोघ से नाराज हूं... या फिर समिधा से? अमोघ से नाराज़गी तो फिर भी लॉज़िकल है, लेकिन समिधा... उस बेचारी को तो अभी तक कुछ पता ही नहीं है. एकाएक उसके विचार की धारा ही बदल गयी थी, उस दिन... उसे लगा था कि यदि समिधा उसके घर में हो तो फिर घर का रंग ही कुछ और होगा. हां... अपनी सबसे अजीज दोस्त अपने ही साथ रहे... वाह और अगली सुबह सब कुछ बड़ा ख़ुशनुमा-खुशनुमा था. अल्पना ने मौका मिलते ही अमोघ को घेर लिया था. सबसे पहले सवाल किया था 'तू समिधा को लेकर सीरियस है न...?'

अमोघ ने उसे बे-यक़ीनी से देखा था. 'मतलब...?'

'मतलब तू समिधा को पसंद करता है, लेकिन आर यू सीरियस...?' अल्पना ने उसे चेतावनी की तरह ही पूछा था.

अमोघ थोड़ा हडबड़ाया था, चाहे जुडवां भाई-बहन हैं दोनों... लेकिन पुरुष कभी ख़ुद को लेकर इतना सहज कहां हो पाया है. ख़ासतौर पर उसके बारे में जिसके मिलने न मिलने में ही संदेह हो. 'यार यह क्या सवाल हुआ?' जब उसने ये कहा तो अल्पना भड़क गयी.' मतलब बहुत सीधा है, टाइम पास करने के लिए मेरी समिधा नहीं है.... भाई... उसके लिए किसी और को ढूंढ़ लो.'

अमोघ ने उसे आश्चर्य से देखा था. अरे... ये तो समिधा की दोस्त हो गयी, मेरी बहन कहां गयी? और मुस्कुराया था. 'आय लव हर...' और फिर उसके बाद दोनों भाई-बहन समिधा के इर्द-गिर्द बने रहते थे. अल्पना को याद आया कि एक बार जब उसकी कॉलोनी के किसी लड़के ने उसे रोककर कहा था कि 'तुम हमें पसंद हो...' तब वह कितना हड़बड़ा गयी थी और इतनी तनाव में थी कि पूरा दिन रुआंसी-रुआंसी घूमती रही थी. जब अल्पना ने बहुत दबाव बनाया तब उसके मुंह से फूटा. और उसके तनाव से अमोघ कैसा उदास-उदास सा रहता था. उसकी जरा सी ख़ुशी, उसकी जरा सी उदासी अमोघ को कैसा कर देती थी. अल्पना को एकदम ग़ुस्सा आया... कमीनी के लिए कितना लड़ी मैं और वो... मुझे भूल ही गयी जैसे.

आखिर देर रात डिनर के बाद अल्पना ने समिधा से बात की... पहले तो उसने बहुत डांटा उसे, वो मुस्कुराती रही. और फिर ख़ूब देर तक दोनों ने बहुत सारी बातें की. अल्पना को ऐसा लगा जैसे समिधा ने बरसों से सब कुछ संचित कर रखा है. फिर उसने अलुमनी मीट के बारे में उससे पूछा तो उसके जवाब ने उसे जैसे निराश कर दिया. उसने बहुत की ठंडा-ठंडा-सा रिएक्शन दिया था. बात ख़त्म हो जाने के बाद बहुत देर तक अल्पना समिधा से अपनी बातचीत को मन में दोहराती रही. सारी बातचीत के दौरान कुछ चीज़ों पर समिधा की प्रतिक्रिया को उसने बार-बार जैसे रिवाइंड किया हो. फ़ेसबुक अपडेट्स नहीं करने पर जब उससे बात हुई तो लगा जैसे टाल रही है. इसी बातचीत के बहाने वे कई नयी-पुरानी यादों से रूबरू होती रही और इसी सबमें उसकी कब नींद लगी उसे कुछ पता

नहीं.

सुबह से ही घर में हड़बड़ी थी. अल्पना जो आने वाली थी. तीन साल बाद अल्पना अपने घर, अपने लोगों के बीच आने वाली है. कुछ दिन अमोघ और समिधा के साथ रहेगी, यहीं एलुमनी मीट अटैंड करेंगे तीनों फिर वो मां-पापा के पास चली जाएगी. सुबह दोनों एयरपोर्ट पर पहुंचे थे अल्पना को रिसीव करने. सामने पड़ते ही अल्पना जैसे झूम गयी थी समिधा पर... अमोघ उसे देखकर मुस्कुराया था. तीन साल बाद उसे सामने से देख रहा है. स्काइप पर तो बातें हो जाती थीं, लेकिन सामने से देखे तो उतना वक़्त हो ही गया था. अल्पना ने समिधा को बहुत ग़ौर से देखा था. उसका चेहरा अब भी पारदर्शी था, उतना ही जितना वो छोड़कर गयी थी... तभी तो उस पर्त के पीछे से झांकती उदासी उसे नज़र आ गयी थी. अल्पना को दिखा कि उसका मुलायम सा... सौम्य-सा चेहरा जरा कठोर नज़र आने लगा था. उसका रंग अब भी उतना ही साफ़ और चमकीला था, उसके नैन-नक्श अब भी उतने ही तीख़े थे. फिर भी कुछ ऐसा था जो मिसिंग था.

मीरा बहुत उत्सुकता से अल्पना को देख रही थी. तीन साल में बच्ची बुआ को भूल ही चुकी होती, यदि स्काइप पर अल्पना उसे हंसाती नहीं रहती. फिर भी शुरुआती संकोच के साथ वो उसे बस देख रही है. अल्पना बुआ के कपड़े... उसका खिलता रंग... उसकी निर्झर हंसी... सब कुछ. अमोघ ड्राइविंग सीट पर था. अल्पना ने समिधा का हाथ थाम लिया था. अमोघ ने मीरा को आगे वाली सीट पर बैठने का इशारा किया. कुछ पल मीरा ने मां के संकेत का इंतज़ार किया. समिधा का संकेत समझकर मीरा अगली सीट पर जाकर बैठ गयी. समिधा और अल्पना पिछली सीट पर जाकर बैठ गयीं. अल्पना एकदम मुक्त नज़र आ रही थी. अल्हड़... उतनी ही जितनी सात–पांच साल पहले शादी होकर यहां से विदा हुई थी.

सौमित्र के साथ... सौमित्र... अमोघ सोच रहा है. पिछली बार अल्पना आयी थी, तब भी सौमित्र साथ था, लेकिन वो एक दिन ही उनके साथ रुका था. फिर वो अपने घर चला गया था. जब-जब अमोघ ने अल्पना से सौमित्र के अलग से व्यवहार के बारे में बात करनी चाही, तब-तब अल्पना ने टाल दिया था. और दोनों के अमेरिका लौटने के लगभग चार महीने बाद ही अल्पना ने वो शॉकिंग न्यूज़ दी

थी कि वो दोनों अलग हो गये हैं. अमोघ ने पूछा था 'क्यों?' अल्पना ने बस इतना ही जवाब दिया था, 'हम दोनों साथ रहने के लिए नहीं बने हैं.' समिधा ने भी पूछा था... तब अल्पना ने उसे भी यही बताया था. और आज अल्पना बिना सौमित्र के भी ख़ुश है. तो क्या सचमुच दो लोग एक-दूसरे से प्यार करते हुए भी एक-दूसरे के साथ ख़ुशी से नहीं रह सकते हैं?

ऐसे ही किसी दिन किसी दूसरी बात के संदर्भ में अल्पना ने समिधा को कहा था कि 'प्यार हर वक़्त सवार नहीं रहता है यार... लिबर्टी इज़ ब्लिस... इफ़ लव कन्वर्ट इनटू पज़ेशन, दैन इट सफ़ोकेट्स...' यदि समिधा सही-सही इसका संदर्भ समझी थी तो वह ख़ुद के और सौमित्र के बीच के रिश्तों की ही बात कर रही थी.

एकाध बार उसने समिधा से मज़ाक में यह भी कहा था कि 'ये भारतीय मर्द है न... बदलाव के साथ नहीं चलते हैं. पत्नी कामकाजी चाहिए तो... उसकी दुनिया हो, यह भी चाहते हैं, लेकिन उसे स्पेस देने से गुरेज़ है उनको... और ख़ुद अपने लिए सब कुछ सिक्योर कर लेना चाहते हैं.' जब दोनों अलग हो गये थे, तब समिधा ने सारी कड़ियां जोड़ी थीं, लेकिन तब तक अल्पना सब वाइंड-अप कर चुकी थी और यह समिधा भी जानती है कि मूलतः अल्पना उसकी तुलना में ज़्यादा इंडिपेंडेंट और ज़्यादा विद्रोही है. इस मामले में वो भावुक नहीं है. शी नोज़ हर पर्सनल प्रायोरिटीज़... और इसीलिए शायद उसने समिधा को स्पेस

भी दिया और प्यार भी. तभी तो शायद समिधा अमोघ से ज़्यादा अल्पना के क़रीब है और ख़ुद अल्पना भी अमोघ की तुलना में समिधा से ज़्यादा प्यार करती है. समिधा कई बार सोचती थी वो ख़ुद जैसी होना चाहती है, वैसी अल्पना को देखकर उससे प्यार करने लगी है. जो भी है... अल्पना में एक गहरी समझ है... कैसे प्यार करना है और कैसे स्पेस देना है... कैसे समझाना है और कैसे अधिकार जताना है.

दो दिन गुज़र गये थे अल्पना को आये हुए... समिधा ने एक तरह से छुट्टी ही ले ली थी काम से. अमोघ भी जल्दी ही आ जाया करता था. आख़िर तीसरे दिन यूनिवर्सिटी की एलुमनी मीट थी. कार्यक्रम सुबह से ही था. सुबह से ही घर में भी हड़बड़ी नज़र आ रही थी. अमोघ बाहर से ही नाश्ता ले आया था ताकि हड़बड़ी जरा कम हो जाये... समिधा थोड़ी रिलेक्स्ड रहे. नाश्ते की टेबल पर बैठे थे सारे कि अल्पना ने बहुत ग़ौर से समिधा को देखा था... 'तुम्हें अभी चेंज़ करना है?' क्रीम कलर की सिंपल साड़ी और थ्री फोर्थ स्लीव्ज़ का ब्लाउज़ पहने, कानों में वही टॉप्स थे, जो वो हर दिन पहनती है और बालों के ढीले-ढाले जूड़े को देखते हुए पूछा था.

'नहीं... मैं तैयार हूं.' समिधा ने कहा तो अल्पना ने उसे बहुत आश्चर्य से देखा फिर अमोघ की तरफ़ देखा.

'यार तेरे ड्रेसिंग सेंस का क्या हुआ सुमि.... जबसे आयी हूं तब से रस्टी और डल कलर्स में ही देख रही हूं... कोई प्रॉब्लम है...?' अल्पना ने बिना किसी लाग-लपेट के जिस तरह से पूछा था, उससे समिधा जरा असहज हो गयी थी. उसने अमोघ की तरफ़ जिस तरह से देखा था, वो अल्पना ने नोट कर लिया था.

'नहीं यार... ऐसा कैसे सोच सकती है?' उसकी आवाज़ भर्राने लगी थी.

'नहीं... मतलब यू सीम्स वेरी इन्डिफरेंट... मुझे तुम बहुत अजनबी-अजनबी लग रही हो... कहीं गुमशुदा-सी हो... बहुत बदली हुई... बट लीव दिस मैटर वी विल डिस्कट इट लेटर... यू मस्ट चेंज़ फस्ट...' उसने बस जैसे आदेश ही दिया था.

'यार कुछ भी प्रिपेयर नहीं है मेरे पास', समिधा ने बेचारगी से कहा था.

'चलो कुछ देखते हैं...' अल्पना उसे लगभग ठेलते हुए ही ले गयी थी.

अमोघ थोड़ा असमंजस में खड़ा था. उसे बहुत दिनों बाद महसूस हो रहा था कि समथिंग इस मिसिंग... मगर क्या?

अल्पना उसे इस तरह से लेकर आयी, जैसे नयी दुल्हन को लेकर आयी हो. और समिधा भी ऐसे ही सकुचा रही थी. समिधा ने मोरपंखी रंग की प्योर सिल्क की साड़ी पहनी हुई थी. उसका रंग समिधा के चेहरे पर रिफ्लेक्ट हो रहा था. अल्पना उसके सामने जाकर खड़ी हुई... 'अब लग रही है न सुमि... मेरी वाली' और उसने उसे बांहों में ले लिया. बहुत दिनों बाद सुमि की आंखें भीगी थीं... बहुत दिनों के बाद उसके भीतर कुछ उमड़ा था.

बहुत सारे पुराने दोस्त मिले थे. क्लास मेट्स भी, बैच मेट्स भी और यूनिवर्सिटी मेट्स भी... रोहित भी... रोहित... अल्पना उसे देखते ही उसकी तरफ़ बढ़ी थी, लेकिन बीच में ही कहीं समिधा छूट गयी थी.... जाने छूटी थी या फिर जानबूझ कर उसे छोड़कर चली गयी थी. पूरे वक़्त रोहित को लेकर असहज बनी रही थी. अल्पना को समिधा बहुत अजीब लगने लगी थी. देर रात तक सब वहीं रहे थे. ज़्यादातर अपने स्पॉउस के साथ ही थे... कुछ अल्पना की तरह भी थे, जो या तो अलग हो चुके थे या फिर शादी ही नहीं की थी. कल शाम से दो दिन का ऑउटिंग का प्रोग्राम था. नाइट में बस से सब पचमढ़ी के लिए निकलेंगे.

रात में थके हुए घर पहुंचे थे. मीरा थोड़ा ज़्यादा चिढ़चिढ़ कर रही थी, तो समिधा उसे लेकर सोने चली गयी. अल्पना ने अमोघ से कहा, 'मुझे तुझसे कुछ बात करनी है भाई.'

अमोघ समझ नहीं पाया कि अल्पना को उससे क्या बात करनी है और वो भी समिधा की एब्सेंस में...?

'हां, बोल !' अमोघ ने स्टडी में पड़े सोफ़े पर बैठते हुए पूछा था. अल्पना ने इज़ी चेयर पर बैठकर कुशन हाथ में ले लिया था. 'तेरे और सुमि के बीच सब कुछ ठीक है न...'

'हां... तुझे ऐसा क्यों लग रहा है?' अमोघ ने आश्चर्य से पूछा था.

'मुझे सुमि वैसी नहीं लगी... जैसी वो होती है. मेरे आने से तुम दोनों के बीच कोई गड़बड़ तो नहीं हुई है. आय मीन...' उसने बात वहीं छोड़ दी.

'तू कैसी बातें कर रही है यार... ऐसा कुछ नहीं है. वी आर हैप्पी...।' अमोघ ने बहुत मुस्कुराते हुए कहा था.

'नॉट वी... ओनली यू आर हैप्पी... सुमि इज़ नॉट हैप्पी... कांट यू सी हर...?' उसने आक्रोश में भरकर कहा था. 'ज़स्ट लुक एट हर... वो मुरझायी हुई सी लगने लगी है... कितना खिलखिलाती थी? कितना बोलती थी, और अब... तुझे ये अहसास क्यों नहीं हुआ? तू तो उसके साथ ही रहता है... ?' अल्पना ने जैसे उसे नींद से जगाया था.

'हां... वो पिछले कुछ दिनों से चुप-चुप-सी रहने लगी है. स्ट्रेंज... लेकिन मेरा ध्यान इस पर कभी गया ही नहीं.'

'... पता नहीं तुझे कभी उसने बताया या नहीं, लेकिन हमने एफबी पर बहुत चैट की है... लगभग हर दिन ही थोड़ी बहुत तो बात हो ही जाया करती थी. कितना एक्टिव रहती थी, लेकिन लगभग साल भर से वो बिल्कुल ग़ायब है. एक-दो बार मैंने उसे हलो ड्रॉप किया, लेकिन उसने कोई रिस्पांस ही नहीं दिया. अब तक मैं ये समझती आ रही थी कि बिज़ी हो गयी है, जैसे मैं हो गयी हूं. मेरे पास तो सिर्फ़ मेरा काम और दोस्त ही हैं, उसके पास तो काम भी है, घर भी है, पति और बच्ची सब है तो ज़ाहिर है ज़्यादा वक़्त नहीं मिलता होगा. लेकिन अब उसे देखकर मुझे महसूस हो रहा है कि नहीं... बिजीनेस नहीं, कुछ और ही है.' वो एकदम से उत्तेजित हो गयी... अमोघ सचेत हो गया. 'अब याद आता है कि जब कभी मैं देर रात वहां से फ़ोन लगाती तो वह सहज होकर बात करती, लेकिन शाम को कॉल करती तो वो अनमनी-सी बातें करती थी. और अक्सर तो वो यह कह देती कि यार अभी बहुत जल्दी है, मैं फ़ुर्सत में बात करूंगी. समझ पा रही हूं कि तेरे सामने वो किसी से खुलकर बात नहीं कर पाती है. आज भी महसूस किया है यह मैंने... कई बार... जब तू साथ होता है, तब वो चुप-चुप रहती है. और ये बता कि ये रोहित का क्या मसला है. समिधा अचानक रोहित को देखकर कटने... सिमटने क्यों लगती है?'

अमोघ की समझ में नहीं आया... 'रोहित का कोई मसला नहीं है... और जो था, वो तो तुझे पता ही है.' उसने सब कुछ झटकने के-से अंदाज़ में कहा.

'हां... लेकिन दैट वाज़ पास्ट यार... अब सब बहुत-बहुत साल आगे बढ़ गये हैं. तूने देखा नहीं रोहित का बेटा तो कॉलेज़ जाने की तैयारी में है. वंस अपान ए टाइम ही लाइक्ड समिधा... दैट टाइम हैज़ गॉन... अब क्या है?' - उसने पूछा अमोघ से... फिर ख़ुद ही बुदबुदायी...' मैं समिधा से पूछूंगी... क्या प्राब्लम है. इस तरह का बचकाना रिएक्शन क्यों? आई मीन वाइ डोंट यू पीपल बिहेव लाइक मैच्योर्ड परसन्स...? एक वक़्त की लाइकिंग सिचुएशन... टाइम बदल जाने के बाद भी लाद कर क्यों चल रही है. क्यों समिधा २०-२२ साल की नासमझ लड़की की तरह बिहेव कर रही थी, जबकि आजकल तो इस उम्र की लड़कियां तक इस तरह से बिहेब नहीं करती हैं. मुझे तो रोहित एकदम नॉर्मल लगा... वेरी डिसेंट. समिधा का ही बिहेवियर बहुत ऑड था.'

अमोघ थोड़ा पीछे चला गया. सोचने लगा कहीं वो ही तो ज़िम्मेदार नहीं है. जब समिधा ने रोहित की फ्रेंडशिप रिक्वेस्ट को ओके किया था तो अमोघ ने ही उससे पूछा था. 'क्यों किया?' आज जो तर्क अल्पना दे रही है, लगभग वही तर्क समिधा ने भी दिये थे. 'बहुत वक़्त गुज़र गया है, सब अपनी-अपनी दुनिया में सैटल्ड है, ख़ुश हैं... अब कुछ भी नहीं बदलेगा.' ये भी कि 'क्या तुम मुझ पर शक कर रहे हो?' और अमोघ ज़्यादा आक्रामक हो गया था... 'सब ठीक है, लेकिन इस पूरी दुनिया में यदि वो तुम्हारी लिस्ट में नहीं होगा तो कोई पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा.' एक-एक करके बहुत सारे टुकड़े उसके सामने आ खड़े हुए थे... या यह कि 'तुमने ऐसा डीपी क्यों लगाया या ऐसा स्टेटस क्यों लिखा...?' यहां तक कि उसके स्टेटस पर या या उसके डीपी पर किसी ने ऐसा कमेंट किया है तो क्यों किया है? या कोई उसे ऐसे कैसे कमेंट कर सकता है...? इसके फ़ोन क्यों आते हैं तुम्हें? या यह कि तुम किस तरह से बातें करती हो...? या ये क्या जवाब दिया तुमने? इस तरह के तमाम सवाल और प्रतिरोध... आज अमोघ सोचता है तो पाता है कि समिधा ने उससे कभी ये नहीं पूछा कि तुम्हारी लिस्ट में ये कौन है और क्यों है? और ये भी कि तुम किससे चैट कर रहे हो? कौन-कौन है तुम्हारी फ्रेंड लिस्ट में... और किस-किस से संपर्क में हो...? तो क्या मैं हमेशा शक में ही रहता हूं? उफ्... मैं अपने सामने किस रूप में आ खड़ा हुआ हूं? अमोघ सोच रहा है. कपड़ों को लेकर भी उसके कमेंट बड़े अजीब से हुआ करते हैं, जैसे 'आपकी ड्रेसिंग ये सिद्ध करती है कि आपकी मंशा क्या है? व्हाइ

जींस-टीशर्ट? व्हॉट यू वांट टू शो...?' 'जो आप दिखाना चाहती हैं, वही लोग देखेंगे...' तब वो तर्क दिया करती थी...लेकिन धीरे-धीरे उसने इस सबसे ख़ुद को अलग कर दिया था. पता नहीं पहले उसने कहना बंद किया या अमोघ ने सुनना. कुछ महीनों को याद किया तो याद आया कि न उसने कोई अपेक्षा की, न कुछ डिमांड... न कोई कंप्लेंट... दोनों जैसे अपने-अपने घेरे में अलग-अलग रह रहे हैं... नदी के दो द्वीपों की तरह... अब तो जो दिखा वह यह है कि वो चुप रहने लगी है... उसने कहना बंद कर दिया है. और सबसे बड़ी निराशा की बात यह है कि अमोघ को याद ही नहीं कि यह सब कबसे होना शुरू हुआ? वो अमोघ के आसपास ही रहती है, लेकिन अमोघ इतना ग़ाफिल हो गया है कि उसका लगातार चुप होना देख ही नहीं पाया. वो देख ही नहीं पाया कि समिधा लगातार विथड्रॉ हो रही है... वो नहीं देख पाया उसका लगातार ख़ुद में सिमटने को... नहीं देख पाया कि वो किस तरह से रिश्तों से... दोस्तों से कटने लगी थी.

उसने समिधा के रहन-सहन में हुए परिवर्तन को मार्क नहीं किया. उसने उसके चेहरे के बदलावों को मार्क नहीं किया... उसने उसके लगातार ख़ुद को समेट लिये जाने को मार्क नहीं किया... उसने उसके चुप होते चले जाने को मार्क नहीं किया... उसमें हो रहे बड़े-बड़े बदलावों को नहीं देखा... इतना ग़ाफिल कैसे हो सकता है वो. अल्पना ने उसे झकझोरा था... ये देखो... और किसी क़िताब से निकला एक कागज अमोघ के हाथ में थमा दिया था और ये कहकर चली गयी थी कि मैं चाय बनाकर लाती हूं. लिखावट समिधा की थी —

मैं, अपने सपनों-आकांक्षाओं के लिए
उदासीन हो जाना चाहती हूं,
मैं, अपनी इच्छाओं-अपेक्षाओं के प्रति
निःस्संग हो जाना चाहती हूं.

मैं, अपने होने-रहने के प्रति
निर्विकार हो जाना चाहती हूं,

मैं, अपनी सारी मानवीय कमज़ोरियों
से निजात पा लेना चाहती हूं,
मैं, अपने ही दुख-उपेक्षाओं के लिए
पत्थर हो जाना चाहती हूं,

अपनी ही मां-भाभी-बहन
सास-देवरानी-ननद-जिठानी
दोस्त-प्रेयसी-साथी हो जाना चाहती हूं,

मैं फकत 'औरत' हो जाना चाहती हूं.

अमोघ उसे पढ़कर आवाक है... यह उसके प्रेम पर... दोस्ती पर... सब पर सवाल है. कहां से गड़बड़ाया है और कहां से सुधारना है वो नहीं जानता... जाने-अनजाने वो भी वही कर रहा है, जो आमतौर पर पत्नियों के साथ पति करते रहे हैं. कस्टमाइज़ेशन... अपने अनुरूप ढालने की कोशिश... हम कितना ही कहें, हम पत्नियों के प्रति एक बेहद सामाजिक पुरुष हो जाते हैं, जो पत्नी को बस स्त्री रूप में ही देखता है और अपेक्षा करता है. दुनिया और ख़ासतौर पर पुरुष के प्रति अपनी सारी समझ को वो अपने ही क़रीब रहने वाली स्त्रियों पर अप्लाय करता है... और इसी के चलते वो उसकी ही आज़ादी को सीमित करता है... इसीलिए वो उसके मानव रूप को हमेशा इग्नोर करता रहता है. बहुत करके भी हम अपनी कंडिशनिंग को साफ़ नहीं कर पाये हैं. अमोघ अब समझ पा रहा है कि क्यों अल्पना अकेले रह रही है... क्यों सौमित्र से अलग रहकर भी अल्पना ख़ुश है...? सौमित्र के किरदार को भी समझ पा रहा है और अल्पना और समिधा की बुनावट के अंतर को भी... लेकिन अब क्या...?

अल्पना ने चाय का कप अमोघ को थमाया... 'मुझे समिधा मेरी दोस्त के तौर पर... तेरी दोस्त के तौर पर... हम दोनों की दोस्त के तौर पर ज़िंदा चाहिए... बस... कैसे? ये तुझे तय करना है.' — अमोघ को अल्पना की आवाज़ आ रही है, मगर बहुत दूर से... वो भीतर कहीं गहरे ख़ुद को टटोल रहा है... कहां से बिगड़ा था और कहां से शुरुआत करनी है...? रात गुज़र रही है, सुबह होने को है....

२७, श्रीविहार कॉलोनी,
आसाराम आश्रम के सामने,
खंडवा रोड, इंदौर (म. प्र.)
मो. ९८२७२८८८१८
ईमेल : amita.neerva@gmail.com

कोई भी नहीं...

सैली बलजीत

७ जनवरी १९४९
विद्युत इंज़ीनियरिंग के तकनीकी संयंत्रों के बीच नौकरी करने के उपरांत एस.डी.ओ. के पद से कुछ साल पूर्व सेवानिवृत्त.
: लेखन :
देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित.
: प्रकाशन :
अपनी-अपनी दिशाएं, गीली मिट्टी के खिलौने, तमाशा हुआ था, अब वहां सन्नाटा उगता है, बापू बहुत उदास है, यंत्र-पुरुष, समंदर में उतरी लड़की, मुखौटों वाला आदमी, घरौंदे से दूर, अंधा घोडा, वह आदमी नहीं था, यह नाटक नहीं था, टप्परवास, घोड़े अब हांफ रहे है, तुम यहां ख़ुश हो ना... चंद्रमोहन (कहानी-संग्रह); मकड़जाल (उपन्यास); नागफनियों के देश में (नाटक); खाली हाथ और लपटें, आज के देवता (लघुकथा संग्रह); पिता जी अब घर में होते हैं, छांव खतरे में है (कविता संग्रह); मेरे आईने में, अपने-अपने आईने, स्मृतियों के तलघर (संस्मरण); धूप में नंगे पाव, कहन के दिन, ख़ूबसूरत शर और चीखें (संपादित कहानी संग्रह)
: विशेष :
विश्वविद्यालयों से एम. फ़िल. हेतु शोध कार्य संपन्न, अनेक सम्मानों से अलंकृत, केंद्रीय हिंदी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय), नयी दिल्ली के हिंदीतर भाषी हिंदी लेखन के अंतर्गत 'मुखौटों वाला आदमी' कृति पर राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त.

इस बात का ताज़्ज़ुब होना स्वाभाविक था कि अभी कुछ देर पहले जीवित कहलाने वाला वो बूढ़ा आदमी बीच सड़क पर 'डेड बॉडी' में तब्दील हुआ पड़ा था. तांगा चरमराते हुए रुका था. अगर तांगे में बैठा कोई ग्रामीण-सा दिखने वाला आदमी एकाएक घोड़े की लगाम न थामता तो निस्संदेह सामने वाली दिशा से आ रहा तेज़ गतिवाला ट्रक तांगे के ऊपर चढ़ गया होता. वह बूढ़ा आदमी जो बीच सड़क पर मृतावस्था में पड़ा था, अभी कुछ देर पहले ही धड़ाम से गिरा था. तांगे के आगे बैठा हुआ घोड़े की लगाम थामे हुए था वह, जाने एकदम उसे क्या हुआ कि तांगे से नीचे लुढ़क गया. अवश्य चक्कर आ गया होगा या किसी बीमारी से त्रस्त रहा होगा. तांगे को वह बहुत ही सलीके से चला रहा था. ऐसा करते हुए वह एक निपुण तांगेवाला लग रहा था. उसकी उम्र अठहत्तर सालों के आसपास की होगी, ऐसा दिखता था. तांगे को हांकते हुए, वह बस खांसने में तल्लीन रहा था बराबर. इस बीच वह सलीके से अपनी छोटी सी बारीक बांस की छड़ी से घोड़े को हांकता रहा था. उसका ठेठ पंजाबी लहजा था. वह बार-बार घोड़े को पुचकारता, कभी दुत्कारता, पलोसता रहा था.

'ओए जिऊण जोगिआ', वह घोड़े को पुचकारता तो यही शब्द निकलते उसके मुंह से. 'ओए मर जानिआं...' 'तैनूं मौत पवे...' 'तेरा कख मर रहे...' वह घोड़े को दुत्कारते हुए ऐसी भाषा का इस्तेमाल करते हुए तांगा हांकता, तो सभी सवारियां ठहाका लेने लगतीं. उसने तांगा ठूंस कर भर रखा था सवारियों से. अभी भी उसकी तमन्ना थी कि एकाध सवारी और मिल जाती तो फेरा तगड़ा लग जाता. बीच-बीच में कोई सवारी उतरती तो वह तंबे में ठूंसी रुपयों वाली गुत्थी निकाल लेता और नोट गिनते रुपये उसमें डाल कर, सलीके से उसे सुतरी से बांधकर, फिर वही तंबे में खोंस लेता. इतनी उम्र के बावजूद उसमें चुस्ती फुर्ती इतनी थी कि वह नवंबर महीने की ठंड में भी कोई स्वेटर नहीं पहने हुए था.

अभी बस अड्डे के बाहर वह तांगे के सामने खड़ा हेक लगा था. मुश्किल से बीस मिनट हुए होंगे, इस बात को. मरियल-सा जिस्म, कमर लगभग तीर-

कमान की तरह मुढ़ी हुई, दाढ़ी कई दिनों से जैसे बनायी नहीं, पुराना-सा मेलयुक्त मलेशिए का कुर्ता, बिना स्वेटर डाले हुए. नीचे सफ़ेद खद्दर का कई दिनों से धुला हुआ तंबा बांध रखा था.

वह बराबर चिल्ला रहा है, 'चलो आ जाओ भई बड्डे दरवाज़े, मीयां मुहल्ला, अचली दरवाज़ा, पहाड़ी दरवाज़ा...आ जाओ भई फटाफट...'

'क्या लेगा बड्डे दरवाज़े का...' एक औरत सवारी पूछती है.

'आ बैठने की कर माई...लेना क्या है...सस्ती सवारी है...तीन रुपए...'

'दो रुपए लेने हैं तो बैठूं...?' वह औरत तकरार करती है.

'चल बैठ गांट...चल दो ही देवीं...' वह बूढ़ा उस औरत को तांगे में बैठने का संकेत करते हुए फिर चिल्लाने लगता है... 'चलो भई...आ जाओ, बड्डे दरवाज़े...अचली दरवाज़े...चल बाऊ...आ जा...'

एक बाबूनुमा सवारी वहां आकर ठिठक जाती है, 'चलना कब है...? अगर अभी चलना है तो चढ़ जाता हूं तांगे पर...'

'पर बाऊ तांगा भर तो लेने दो... अभी तो चार ही सवारियां हुई हैं...' वह फिर ऊंची आवाज़ में हेक लगाने लगता है.

'तेरा तांगा तो शाम तक नहीं भरेगा...कब तक बैठाए रखेगा...?'

'खाली कैसे ले जाऊं बाऊ, फेरा तो भरकर लगेगा ना...?'

लगभग पंद्रह मिनट तक सवारियां उससे तकरार करती रही थीं. कई जने तो तांगे से उतर कर दूसरी कोई सवारी का प्रबंध करने की ज़िद भी करने लगे थे. तांगा पूरा भर चुका था. तीन सवारियां आगे और तीन सवारियां पीछे. लेकिन...अभी भी उस बूढ़े तांगे वाले की आंखों में सवारियां लादने की तृष्णा बाक़ी थी. सवारियों में एक बाबू आदमी के अतिरिक्त एक लड़की भी है.

'चल अब, क्या देखता है...तांगा तो भर गया है.' एक जना तांगे के पीछे बैठे हुए कहता है.

'एक सवारी ले लूं...तांगे का 'उलार' ठीक कर लूं, चलना ई है...काहे को चिंता करता है बाऊ...?' वह ऊंची हांक लगाते हुए, इधर-उधर देखता है, 'आ जा भैणां, चलना है बड्डे दरवाज़े...आ जा...दो रुपए-दो रुपए... बड्डा दरवाज़ा...आ जा भैण मेरिए...' वह बस अड्डे से बाहर निकल रही एक औरत को कहता है...जो कुछ देर तक सोचती हुई... तांगे के क़रीब आ जाती है... टुकुर-टुकुर तांगे की ओर देखती है, 'कहां बैठाओगे...? कोई जगह तो है नहीं...?'

'क्यों चिंता करती हो मेरी भैणा... अब्बी बैठाए देते हैं...पीछे से एक सवारी आगे आ जाए भई... शाबाश... आओ भई एक जना... तू आ जा निक्केआ... आ जा शाबाश...' वह बूढ़ा पीछे बैठे हुए कोई स्कूटर मैकेनिक से दिखनेवाले छोकरे की ओर इशारा करते हुए कहता है. सवारियों की अदला-बदली के बाद, जब तांगा बस अड्डे से बाहर निकला तो सभी ने इत्मीनान की सांस ली थी. वह तांगे के आगे लगे बांस पर चढ़े हुए, इधर-उधर चुस्ती से देखते हुए तांगा चलाने लगा था. बीच-बीच में उसका घोड़े को पुचकारना, दुत्कारना बराबर जारी रहा था. 'ओए जिऊण जोगिआ...' ..'ओए मरजानिआं...तैनू मौत पवे.' बीच-बीच में वह सवारियों से भी बतियाता जा रहा था.

सड़क पर तेज़ रफ़्तार से बसें, कारें, ट्रक गुज़र रहे थे. वह सलीके से घोड़े को बारीक-सी बेंत से बीच-बीच में पीठ पर सहलाता रहा था. जब भी घोड़े की पीठ पर बेंत से वह धीरे से मारता, घोड़ा और तेज़ गति से भागने लगता.

हंसली के पुल तक आते-आते वह बूढ़ा सही सलामत था. उसने बहुत ही मंझे हुए तांगा चालक की तरह, पीछे से आ रहे ट्रैफ़िक को दायें हाथ से मुड़ने का इशारा करते हुए, तांगे को शहर को जाने वाली सड़क पर मोड़ दिया था. डी. ए. वी. कॉलेज़ लड़कियों वाला आ गया था. उस कॉलेज़ के गेट के सामने, शायद किसी गांव से आयी हुई होस्टल में रहने वाली लड़की ने उतरने को कहा था.

लड़की ठीक कॉलेज़ के गेट के सामने उतरी थी. उस बूढ़े ने उससे पैसे लेते हुए तंबे में खुंसी गुत्थी में बांध लिये थे, इसके साथ ही बेंत की छड़ी, घोड़े की पीठ पर हल्की-सी मार दी थी, 'चल ओए जिऊण जोगिआ...शाबाश...'

घोड़ा सरपट भागने लगा था. इस बार घोड़े की गति कुछ तेज़ थी. वह बूढ़ा तांगेवाला उसी अंदाज़ में सवारियों से बतियाते हुए तांगा हांक रहा था कि एकाएक धड़ाम से लुढ़क गया था, बीच सड़क पर...

वह बीच सड़क पर मरा हुआ पड़ा था.

सभी सवारियां हक्की-बक्की सी रह गयी थीं.

तांगे से सभी सवारियां उतर गयी थीं. लगभग उस बूढ़े को हिला-डुला कर देखना चाहा था.

'बाऊजी...ज़रा देखें तो...मेरे ख़्याल में इसे किसी डॉक्टर के पास ले चलते हैं...' एक ग्रामीण-सी मर्दाना सवारी ने कहा था.

'क्या देखें इसे, यह तो मर गया लगता है... बूढ़े को हार्ट अटैक हुआ है...?' उस बाबू से दिखने वाले आदमी ने उस बूढ़े को छू-कर देखते हुए कहा था.

'एक बार किसी डॉक्टर को दिखा लेते हैं...' वह आदमी फिर बोला था.

'तू क्यों मरा जा रहा है...इस बुड्ढे के लिए, बोलो भई... मर गया तो हमें क्या...? बोल... तेरा कुछ लगता था...?'

'नहीं तो...अपना फर्ज बनता है...'

'चुप कर ओए रहम दिला... मैं तो कहता हूं अभी खिसको यहां से...तू कह रहा है इसे डॉक्टर को दिखाने को...'

'नहीं बाऊजी... बेचारे ग़रीब के घर संदेशा भिजवाना तो फर्ज बनता है ना अपना...?' वह ग्रामीण-सा आदमी फिर बोला था.

'अभी कई जने आ जाएंगे... सड़क पर कई आ रहे हैं...कई जा रहे हैं... कोई तो इनमें से इस बुड्ढे की पहचान का होगा ही...मैं तो कहता हूं...चलते हैं...' वह बाबूनुमा आदमी इधर-उधर ताकने लगा था.

'मैं तो कैता हूं...थोड़ी देर रुकते हैं...कोई इस बुड्ढे की जान-पहचान वाला आ जाएगा तो चले जाएंगे...'

'मेरे वास वक़्त नहीं... मैंने तो ज़रूरी काम से मिलना था किसी को...' वह बाबू आदमी घड़ी देखते हुए बोला था, 'मैं जा रहा हूं...तुम क्यों नहीं खिसकते यहां से... देखा नहीं वह औरत भी चली गयी है... मकैनिक लड़का भी कहीं नहीं दिख रहा...' वह आदमी वहां से खिसक गया था.

उस बूढ़े की मृत देह पर मक्खियां भिनभिनाने लगी थीं. आते-जाते हुए लोग वहां इकट्ठा होते जा रहे थे.

तभी ग्रामीण-सा दिखने वाला आदमी दूसरी खड़ी हुई मर्दाना सवारी को कहने लगा था. वह मर्दाना सवारी चौक उठी थी, 'तुम क्यों फिक्र करते हो रे...हमने ठेका थोड़े

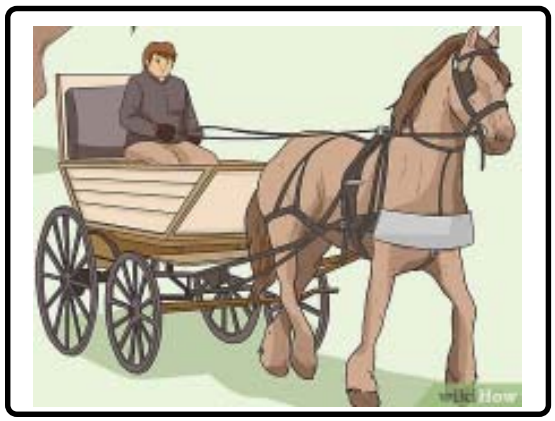

ले लिया था इसका...'

'इंसानियत क्या यही है...? बोलिए...?' वह ग्रामीण आदमी चीख़ा था, 'मैं तो कैता हूं...इसके घर वालों तक संदेशा हमें ही भिजवाना चाहिए...'

'क्यों पचड़े में पड़ते हो...? अब्बी पुलिस आ गयी ना तो मार-मार के छित्तर तुम्हारा... हम सभी का हुलिया बिगाड़ देगी...' वह मर्दाना सवारी बोली थी.

'क्यों भाईसाब... पुलिस हमारा हुलिया क्यों बिगाड़ेगी...? हमने यही गुनाह किया है कि इस तांगे मैं बैठ गये...'

'पर तुम बार-बार यह क्यों कह रहे हो कि हम सभी इसी तांगे की सवारियां हैं...चुप नहीं रह सकता...क्यों जानबूझ कर पचड़े में पड़ता है...'

'तो फिर क्या करना चाहिए...?'

'अब की है ना अकल की बात...जानता है...पुलिस केस में सबसे पहले गवाहियां लेते हैं...फिर हम तो हो गये ना चश्मदीद गवाह...इस बुड्ढे की मौत के...?'

'पर बुड्ढा तो हार्ट अटैक से मरा है ना...?'

'पर पुलिस वाले मानेंगे भला...? मार-मार के छित्तर मूत्तर निकाल देते हैं...तभी तो कहता हूं चुप हो जा...कौन-सा हमारे मुंह पर लिखा है कि हम ही इस तांगे की सवारियां हैं... देख कोई है यहां...? सभी चले गये हैं ना...? मैं तो कहता हूं...अब निकल चलें यहां से...'

'बात तो ठीक है आपकी...अब्बी देखना यहां कई जने आ जायेंगे मंडराते हुए...इससे पहले ही निकल चलते हैं...'

'बेचारा बुड्ढा मारा गया अनआई मौत...आप तो मरा ही बेचारा साथ में सवारियों का क़िराया भी गया...'

'अब क़िराए की बात क्यों सोचें...किसे दें क़िराया... इस बुड्ढे की क़िस्मत में नहीं थे पैसे...'

'धीरे बोलो... देखा नहीं लोगों की भीड़ इकट्ठा हो रही है... अब खिसक लें...किसी को क्या पता कि कौन-कौन बैठा था तांगे में...'

'मैं कहता हूं...पुलिस आ गयी तो मुश्किल हो जायेगी...'

'पुलिस अपने आप भला कैसे आ जायेगी...बोलो किसी ने वहां टेलिफ़ोन किया है...?'

'नहीं तो...'

'फिर क्यों फ़िज़ूल में वक़्त बर्बाद करते हो, अभी निकलो बस...दुनिया में बहुत कुछ देखना पड़ता है... वक़्त बहुत बुरा है...'

वे दोनों सवारियां भी वहां से खिसकने लगीं तो कुछ लोग उस बुड्ढे की 'मृतदेह' के पास आकर रुक गये थे.

'कौन है भई यह बुड्ढा...?' एक जना बोला था.

'हमें क्या पता...?' किसी दूसरे ने कंधे उचका दिये थे.

'कितनी देर हो गयी इस हादसे को हुए...?' कोई जना पूछता है.

'हमें क्या पता, अभी आया हूं मैं तो...' कोई दूसरा बोला था.

'पुलिस में रिपोर्ट लिखवायी किसी ने...?'

'हमें क्या पता भाई, जाने कौन है देखो किस तरह बदबू आने लगी है 'डेड बॉडी से...' कोई मुंह पर रुमाल रखते हुए कहता है.

'इस पर कोई चादर ही डाल दी होती...'

चादर तो अब पुलिस वाले ही डालेंगे आकर...'

'मैं तो कैता हूं...चारे वाली चादर डाल देते हैं...तांगे में चारा तो होगा ही...'

'चल छोड़ यार...क्यों बेवजह पचड़े में पड़ें...चलो यार...पिक्चर का समय हो रहा है...बड़ी देर के बाद अच्छी फ़िल्म आ रही है टी.वी. पर...'

'चल फिर...हमने क्या लेना-देना इस बुड्ढे से...'

वहां से भीड़ छितरने लगी है.

तांगे से उतरी हुई सवारियों में से बची हुई दो सवारियां वहां जुटी भीड़ के दायरे से बाहर आ गयी हैं. लोगों की फुसफुसाहटें वहां साफ़ सुनाई दे रही हैं. तांगा कुछ लोगों ने सड़क के एक ओर खिसका दिया है. घोड़ा अब भी हिनहिना रहा है. कुछ दूरी पर अब भी उस बुड्ढे की मृतदेह पसरी है, मक्खियों से भिनभिनाती हुई.

तभी पुलिस के वहां पहुंचते ही, लोग लगभग वहां से हटने लगे थे. आते ही एक भारी देह वाले थानेदार ने डंडा लहराते हुए पूछा था, 'क्या हुआ इसे...?'

'जी तांगा हांकते-हांकते हार्ट अटैक हो गया जी...ऐसा कैते हैं...' एक जना बोला था.

'तांगे में कौन-कौन था जी...?' वह थानेदार फिर चीख़ा था.

'हमें क्या पताजी...? हम तो इधर से गुज़र रहे थे जी...यहां तो कई लोग खड़े थे...जाने उनमें कौन सवारियां थीं...?'

'बोलो ओए...तुम में से कोई इस तांगे में बैठा था...?' थानेदार ने भीड़ को ललकारा था.

'क्या पता थानेदार साब... जाने कौन थीं...सवारियां अब तक यहां थोड़े होंगी... क्या बात करते हैं... इसकी लाश को ठिकाने लगायें... मरने वाला तो मर गया...' कोई आदमी थानेदार को समझाने लगा है.

'उठाओ भई बुड्ढे की डेडबॉडी को...पोस्टमार्टम के लिए ले चलो...' थानेदार ने अपने मातहतों को आदेश दिया था.

बुड्ढे की डेडबॉडी को पुलिस गाड़ी में लादने के बाद, गाड़ी स्टार्ट हो गयी थी. लोग वहां से खिसकने लगे थे.

उस बुड्ढे की डेथ के दो चश्मदीद गवाह.. .वे दोनों आदमी भी भीड़ का हिस्सा हो गये थे. बुड्ढे की डेथ का कोई भी चश्मदीद गवाह वहां नहीं था...

१२८८, लेन-४,
रामशरणम कॉलोनी,
डलहौज़ी रोड, पठानकोट (पंजाब)
मो : ६२८०६८३६६३

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. - संपादक

आमने-सामने

'मेरे असंख्य पाठक ही मेरे पुरस्कार हैं !'

✍ कमलेश भारतीय

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज और डॉ. हंसा दीप से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है कमलेश भारतीय की आत्मरचना.

बहुत वर्ष पहले भाई अरविंद जी ने आत्मकथ्य लिखने का प्रेमपूर्वक आग्रह किया था. तब लिख नहीं पाया. पत्रकारिता ने बहुत कुछ पीछे ठेल रखा था. अब पूरी तरह सेवानिवृत्त और स्वतंत्र पत्रकारिता व लेखन का समय मिला तो अपने बारे में लिखने का अवसर भी मिल गया.

कमलेश भारतीय

मैं मूल रूप से पंजाब के नवांशहर दोआबा ज़िले से हूं. इसमें शहीद भगतसिंह का पैतृक गांव खटकड कलां भी शामिल होने के कारण पंजाब सरकार ने अब ज़िले का नाम शहीद भगतसिंह नगर कर दिया है. मुझे बहुत गर्व है कि शहीद भगतसिंह की स्मृति में पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा खोले गये गवर्नमेंट आदर्श सीनियर सेकेंडरी स्कूल में सन् १९७९ में मुझे हिंदी प्राध्यापक के रूप में कार्य करने का अवसर मिला. सन् १९८५ में मुझे कार्यवाहक प्रिंसिपल बना दिया गया.

ख़ैर, पढ़ाई से बात शुरू करता हूं. जो लड़का बड़ा होकर स्कूल प्रिंसिपल बना और स्कूल को सर्वश्रेष्ठ स्कूल का पुरस्कार दिलाया, वही लड़का कभी पांचवीं कक्षा तक स्कूल का भगोड़ा लड़का था. पिता जी छोड़कर जाते और कुछ समय बाद बेटे को देखने आते तो पता चलता कि बरखुरदार बस्ता फट्टी रख कर भाग चुके हैं. पिताजी का माथा ठनकता और उनकी छठी इंद्री बताती कि हो न हो, यह लड़का छोटी जाति के नौकर के घर जा छिपा है. वे वहां पहुंचते और थप्पड़ों से मुंह लाल कर घर ले आते. फिर ठिकाना बदलता और फिर खोजते. फिर वहीं थप्पड़ों से बेहाल. पिता जी, दादी और घर के लोग यह मानते कि यह बच्चा नहीं पढ़ेगा. दादा जी कहते कोई बात नहीं. गांव में तीन–तीन भैंसे हैं. बस. कोई गम नहीं. खेतों में चराने चले जाना. मैं मन ही मन इस काम से भी कांप

जाता. भैंस चराने का गुण आया ही नहीं.

थोड़ा बड़ा हुआ तो दादी को हमारे चाचा के लड़के शाम ने बताया कि दादी, एक बूटी आती है. इसे रोज़ सुबह पिला दो. उसने पंसारी की दुकान से ला दी. ख़ूब घोट कर पिलायी. साथ में बृहस्पतिवार के व्रत ताकि देवता की कृपा हो जाये. पता नहीं, देवता ख़ुश हुए या बूटी असर कर गयी कि मैं मिडल क्लास में सेकंड डिवीज़न में पास हो गया. दादी ने परात में लड्डू रखे और ख़ुशी में मोहल्ले भर में बांटे.

यह है मेरी पढ़ाई का हाल. ग्यारहवीं तक मेरे पिता, दादा और दादी का निधन हो चुका था जो मुझे पढ़ाई में सफल देखना चाहते थे. मैं इतना सफल हुआ कि तीनों वर्ष कॉलेज़ में प्रथम रहा. पर अफ़सोस अब कोई परात भर कर लड्डू बांटने वाला नहीं था. मैं कमरा बंद कर ख़ूब रोता अपनी ऐसी सफलता पर जिसे कोई देखने वाला नहीं था. महाविद्यालय की पत्रिका का छात्र संपादक भी रहा. यहीं से संपादन में रुचि बढ़ी. फिर बी. एड. में भी छात्र संपादक. इसी प्रकार गुरू नानक देव विश्वविद्यालय की प्रभाकर परीक्षा में स्वर्ण पदक पाया. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से हिंदी एम. ए. की प्रथम श्रेणी में.

बात साहित्य की करें. मेरे परिवार का साहित्य से दूर-दूर तक नाता नहीं था लेकिन 'हिंदी मिलाप' अख़बार प्रतिदिन घर में आता था, जिसे मैं ज़रूर पढ़ता था. उसमें फिक्र तौंसवीं का व्यंग्य कॉलम 'प्याज़ के छिलके' बहुत पसंद आता. वीर प्रताप अख़बार ने मुझे नवांशहर का बालोद्यान का संयोजक बना रखा था. यह अख़बार इस नाते फ्री घर डाला जाता था. इस तरह दो अख़बार पढ़ने को मिलते. रेडियो ख़ूब सुनता. बाल कहानियों को ज़रूर सुनता. दादी भी सर्दियों में अंगीठी के आसपास बिठा कर कहानियां सुनातीं. वही राजकुमार, राजकुमारियों के क़िस्से. पर हर राजकुमार किसी न किसी राजकुमारी को राक्षस के चंगुल से छुड़ाकर लाता. 'दरवाज़ा कौन खोलेगा' कथा संग्रह में मैंने भूमिका में यही लिखा कि हर जगह राक्षस है. राजकुमार क़ैद है. राजकुमार का संघर्ष है. यही जीवन है.

मेरी पहली रचना 'नयी कमीज़' 'जनप्रदीप' समाचार-पत्र में प्रकाशित हुई. पिता जी मेरी पुरानी कमीज़ नौकर के बेटे के लिए ले गये थे. वह गांव भर में नाचता फिरा और मैं मन ही मन शर्मिंदा होकर सोचता रहा कि हमारी उतरन भी नौकर के बेटे की ख़ुशी का कारण बन सकती है? समाजसेवा का भाव जगा. मैं सन् १९७९ से लेकर १९९० तक खटकड कलां में प्रिंसिपल रहा. साथ में चंडीगढ़ से प्रकाशित दैनिक ट्रिब्यून का आंशिक संवाददाता भी. मेरी रुचि साहित्य के साथ-साथ पत्रकारिता में जुनून की हद तक बढ़ती चली गयी. मेरे पत्रकारिता के अनुभवों के आधार पर लिखी : 'एक संवाददाता की डायरी' कहानी को सारिका में तो 'नीले घोड़े वाले सवारों के नाम...' कहानी को धर्मयुग ने जुलाई, १९८२ के अंकों में प्रकाशित किया. पहली बार पता चला कि लेखक की फ़ैन मेल क्या होती है. प्रतिदिन औसतन दो तीन पत्र इन कहानियों पर मिलते. तब मैंने सोचा कि कम लिखो और कोशिश कर अच्छा लिखो. इसी प्रकार 'कथाबिंब' में प्रकाशित कहानी, 'सूनी मांग का गीत' पर भी अनेक पत्र मिले. कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, अज्ञेय व श्रीपत राय के संपादन में कहानियां प्रकाशित होने का सुख मिला. ज़्यादा लेखन का कोई तुक नहीं. मेरे कथा संग्रह बड़े रचनाकारों के सुझावों पर प्रकाशित हुए. बिना कुछ रक़म दिये.

सन् १९७५ में मैं केंद्रीय हिंदी निदेशालय की ओर से अहिंदी भाषी लेखकों के अहमदाबाद में एक सप्ताह के लिए लगने वाले लेखक शिविर के लिए चुना गया. तब राजी सेठ वहीं रहती थीं और उन्होंने भी इस शिविर में भाग लिया और उनकी पहली कहानी 'क्योंकर' 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, राजन सेठ के नाम के नाम से. लड़कों जैसा नाम होने के कारण उन्होंने अपना नाम राजी सेठ कर लिया. विष्णु प्रभाकर जी हमारी कहानी की क्लास लेते थे. इन दोनों से मेरा व्यक्तिगत परिचय तब से चला आ रहा है. विष्णु जी के बाद उनके परिवार से जुड़ा हुआ हूं. अनेक इंटरव्यूज़ प्रकाशित किये. तीन बार आंमत्रित भी किया क्योंकि संयोगवश हिसार पोस्टिंग हो जाने पर पता चला कि हिसार में अपने मामा के पास विष्णु जी ने पढ़ाई की, नौकरी की और साहित्यिक यात्रा शुरू की. बीस वर्ष यहीं गुज़ारे पर सीआईडी के पीछे लग जाने से दिल्ली चले गये और फिर नहीं लौटे. हां, हिसार के प्रति लगाव बहुत अधिक था. आमंत्रण पर नंगे पांव दौड़े चले आते.

मेरे जीवन में कहानी लेखन में रमेश बतरा का बहुत बड़ा योगदान है. चंडीगढ़ हम लोग इकट्ठे होते और रमेश का कहना था कि यदि एक माह में एक कहानी नहीं लिखी तो मुंह मत दिखाना. लगातार नयी कहानी. फिर वह सारिका में उपसंपादक बन कर चला गया. जहां भी संपादन किया मेरी रचनाएं आमंत्रित कीं. वरिष्ठ कथाकार रमेश वत्स की

चुनौती भी बड़ी काम आयी. वे एक ही बार नवांशहर आये और देर रात शराब के हल्के-हल्के सरुर में जब चहलक़दमी के लिए निकले तब वत्स ने कहा कि मैं आपको कहानीकार कैसे मान लूं? आपकी कहानियां न सारिका में, न धर्मयुग और हिंदुस्तान में आयी हैं. फिर रमेश को बताया. उसने भी कहा कि वत्स की इस बात की चुनौती को स्वीकार करो. फिर क्या था? सारिका, नया प्रतीक, कहानी में स्थान मिला. अनेक अन्य भाषाओं में कहानियां अनुदित हुईं. रमेश असमय चला गया. अब कोई दबाव नहीं. कोई चुनौती भी नहीं. कहानी भी नहीं. पहला कथा संग्रह 'महक से ऊपर' राजी सेठ के स्नेह से डॉ. महीप सिंह ने प्रकाशित किया, अभिव्यंजना प्रकाशन से. रॉयल्टी भी मिली और पंजाब भाषा विभाग से सर्वोत्तम कथा कृति का पुरस्कार भी. पहली कृति पर पुरस्कार और रॉयल्टी. नये कथाकार को और क्या चाहिए?

सन् १९९० में दैनिक ट्रिब्यून के संपादक राधेश्याम शर्मा और समाचार संपादक सत्यानंद शाकिर दैनिक ट्रिब्यून में मुझे पूर्णकालिक चाहते थे. मार्च माह की पहली तारीख़ को प्रिंसिपल, शिक्षण व अध्यापन को अलविदा कहने के बाद पत्रकारिता में आ गया. दैनिक ट्रिब्यून का कथा कहानी पृष्ठ संपादित करने का अवसर मिला. कश्मीर से दिल्ली तक के कथाकारों से काफ़ी जानने और मिलने का मौक़ा मिला. कथा व लघुकथा को विशेष स्थान दिया. इस बीच मेरे लघुकथा संग्रह मस्तराम ज़िंदाबाद, इस बार तो कथा संग्रह मां और मिट्टी, जादूगरनी, शो विंडो की गुड़िया आदि प्रकाशित हुए. फिर मुझे हिसार में दैनिक ट्रिब्यून के स्टाफ़ रिपोर्टर के रूप में अवसर मिला एक नये प्रदेश और संस्कृति को जानने का. इस दौरान डॉ. नरेंद्र कोहली के सुझाव पर मेरा कथा संग्रह एक संवाददाता की डायरी, तो डॉ. वीरेंद्र मेंहदीरता के सुझाव पर जादूगरनी, शो विंडो की गुड़िया कथा संग्रह चंडीगढ़ के अभिषेक प्रकाशन से आये. ऐसे थे तुम, इतनी सी बात, मां और मिट्टी, दरवाज़ा कौन खोलेगा जैसे संकलन भी पाठकों तक पहुंचे.

इस तरह अब तक मेरे छह कथा संग्रह और चार लघुकथा संग्रह हैं. एक संवाददाता की डायरी को अहिंदी भाषी लेखन पुरस्कार योजना में प्रथम पुरस्कार मिला और सबसे सुखद क्षण जब प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों यह पुरस्कार मिला. किसी रचनाकार के हाथों पुरस्कार मिलना आज भी पुलक से भर देता है.

कॉलेज़ छात्र के रूप में ख़ुद की पत्रिकाएं 'प्रयास', 'पूर्वा' और 'प्रस्तुत' प्रकाशित कीं. दैनिक ट्रिब्यून से त्यागपत्र दिलवा कर हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा मुझे नवगठित हरियाणा ग्रंथ अकादमी का उपाध्यक्ष बना कर ले गये. नयी अकादमी की कथा पत्रिका 'कथा समय' का संपादन किया. नये रचनाकारों को स्थान देना सदैव मुझे अच्छा लगता है.

अब अकादमी के पद से मुक्त हूं. हिसार के एक प्रतिष्ठित सांध्य दैनिक 'नभछोर' में प्रतिदिन संपादकीय आलेख और साहित्य हिसार को देखता हूं. अनेक यात्राएं करता हूं. साहित्यिक संस्थाओं के आमंत्रण पर अलग–अलग मित्र बनते हैं. सीखने की कोशिश करता हूं. पुरस्कारों की सूची से कोई लाभ नहीं होगा. जो मुझे पढ़ते हैं, वही मेरा पुरस्कार हैं. मेरे लघुकथा संग्रह 'इतनी सी बात' का फगवाड़ा के कमला नेहरु कॉलेज़ की प्रिंसिपल डॉ. किरण वालिया ने 'ऐनी कु गल्ल के' रूप में पंजाबी में अनुवाद करवा कर प्रकाशित करवाया. यह सुखद अनुभूति और किसी पुरस्कार से कम नहीं. मैं एक बात महसूस करता हूं और कहता भी हूं कि मैंने कम लिखा क्योंकि सन १९८२ में मंत्र मिल गया लेकिन मुझे उससे ज्यादा सम्मान मिला. शीघ्र ही मेरी इंटरव्यूज़ की पुस्तक 'यादों की धरोहर' जालंधर के आस्था प्रकाशन से आयेगी. इसमें एक पत्रकार के रूप में अच्छे, नामवर साहित्यकारों, रंगकर्मियों, पत्रकारों व संस्कृति कर्मियों के इंटरव्यूज़ शामिल हैं जो समय समय पर दैनिक ट्रिब्यून के लिए किये गये थे. पत्रकारिता में भी ग्रामीण पत्रकारिता पर हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय से तो साहित्यिक पत्रकारिता पर हरियाणा साहित्य अकादमी से पुरस्कार मिले. रामदरथ मिश्र की ये पंक्तियां बहुत प्रिय हैं :

मिला क्या न मुझको ऐ दुनिया तुम्हारी
मोहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे,
जहां आप पहुंचे छलांगें लगाकर
वहां मैं भी पहुंचा मगर धीरे-धीरे.

इसी प्रकार अज्ञेय जी की ये पंक्तियां भी बहुत हौसला देती हैं :

कहीं न कहीं
हरे-भरे पेड़ अवश्य ही होंगे.
नहीं तो थका हारा बटोही
अपनी यात्रा जारी क्यों रखता....

१०३४ बी, अर्बन एस्टेट– २,
हिसार- १२५००५ (हरियाणा)
मो. : ९४१६०४७०७५

लघुकथा

मां का मन

✍ अशोक वाधवाणी

आलोक आज हफ़्ते भर के लिए कारोबार के सिलसिले में दूसरे शहर जा रहा था. मां उसे समझाते, हिदायतें दिये जा रही थी, 'हर सुबह, पेट भर नाश्ता किये बग़ैर, काम पर मत निकलना. दोपहर और रात को समय पर, अच्छे भोजनालय में ही भोजन करना. देर रात तक मोबाइल का इस्तेमाल मत करना...' आलोक सिर्फ़ 'हां', 'हूं' में ही गर्दन हिला रहा था. पास में खड़ी बहू, सास की बातें सुन मुस्कुरा रही थी.

दूसरे दिन सुबह टी. वी. पर एक सनसनी-खेज समाचार देखकर मां का दिल दहल उठा. माथे पर परेशानी के कारण, पसीने की बूंदें जमने लगीं. तुरंत आलोक को फ़ोन किया. घबराए स्वर में मां ने कहा, 'बेटा तुम जहां कहीं भी हो, अपना काम अधूरा छोड़कर तेज़ी से किसी सुरक्षित जगह पर पहुंचो. तुम्हारे शहर में विदशी आतंकी घुसकर, निर्दोष लोगों की निर्मम हत्याएं कर रहे हैं,'

'मां आप बेफ़िक्र रहें. मैं तुरंत लॉज़ पहुंचता हूं.' आलोक ने मां को ढ़ाढ़स बंधाते कहा.

मां थोड़े-थोड़े अंतराल बाद फ़ोन करके बेटे का हाल-चाल पूछने लगी. मां द्वारा बार-बार फ़ोन करने के कारण आलोक ने परेशान होकर कहा, 'मैं बिलकुल ठीक हूं. दुबारा फ़ोन मत करना.'

मां का मन नहीं माना. सोने से पूर्व आख़िरी बार फ़ोन करके, आश्वस्त होकर सो जाऊं, यही सोचकर फ़ोन किया.

आलोक अपने क्रोध पर काबू न पा सका. बिफर पड़ा मां पर. चीख़ते-चिल्लाते कहा, 'तुम्हारे दिमाग़ में जो भय का भूत बस गया है, उसे बाहर निकालकर फेंको. अब फ़ोन मत करना. सोने जा रहा हूं.' कहकर बिना विलंब फ़ोन काट दिया.

मां की आंखों से सैलाब उमड़ने लगा. सिसकते-सुबकते ख़ुद से बुदबुदाने लगी, 'मैं भी कितनी मूर्ख हूं, मुझे अपने आप पर कंट्रोल करना चाहिए था.' कुछ देर पश्चात गुस्सा शांत हुआ तो मां ख़ुद को समझाने लगी. 'अंधी ममता के बहकावे में बहकना तर्क संगत, न्यायसंगत नहीं, मेरे बेटे का रोष उबलते हुए दूध के समान है, तुरंत ही ठंडा हो जाता है. मेरा लायक बेटा तो गुणों की खान है. लाखों में एक है. हीरा है ही... अभी देखना. उसे प्रायश्चित होगा और मुझसे माफ़ी मांगेगा... रोते-रोते मां नींद के आगोश में चली गयी.

ओम इमिटेशन ज्युलरी, निकट श्री झूलेलाल मार्केट, पो. गांधीनगर-४१६११९, जि. : कोल्हापुर (महाराष्ट्र).
ईमेल : ashok.wadhwani57@gmail.com

इंटरनेट

✍ शिवकुमार दुबे

लड़के अब गिल्ली डंडा
नहीं खेलते
न ही काग़ज़ की नाव बनाते,
न, ही अब गुड्डे गुड़ियों का
खेल खेलती लड़कियां.
अभी माता-पिता बच्चों
के बचपन से ही
चिंता से सिहर जाते,
क्योंकि उनके भविष्य
की चिंता करने से
उनके चेहरों पर
काली स्याह रेखाएं उभरकर,
बेचैन कर रहीं.
बच्चे बड़े होकर वीडियो गेम
और यू-ट्यूब में मगन है,
कोई इंटरनेट से प्राप्त करा ज्ञान
और कोई अश्लीलता
के कामुक जाल में जकड़ रहा,
और स्वतंत्र होती
संचार व्यवस्थाएं
अपना पत खोकर
एक काल्पनिक दुनिया
में सैर कराती हैं अब.

जे-२१३, एस.एस.इन्फनाइटस-एम.आर., ११ रोड, इंदौर (म. प्र.)-४५२०१०

मेरा जीवन एक खुली क़िताब है !'

✍ डॉ. कमल किशोर गोयनका

प्रतिष्ठित व्यास सम्मान से विभूषित, प्रेमचंद-साहित्य को अमरत्व देने वाले तथा प्रवासी-साहित्य को मुख्य-धारा से जोड़ने को दृढ़-संकल्प डॉ. कमल किशोर गोयनका जी ने अपनी लेखनी से पचास महत्वपूर्ण ग्रंथ और पुस्तकें लिख कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है.

अपने अभूतपूर्व शोध-कार्य और विचारों के सत्यापन के लिए गोयनका जी को कई विरोधियों की चुनौतियों का सामना करना पड़ा है पर विरोधी-चुनौतियों से अविचलित गोयनका जी ने साहस, दृढ़ता और सच्चाई से विजय प्राप्त कर, अपने को सिद्ध किया है. आज गोयनका जी हिंदी जगत में जिस ऊंचाई पर प्रतिष्ठित हैं, उसके मूल में हिंदी के प्रति उनका समर्पण और निष्ठा ही है. अपने अति व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद वे हिंदी में शोध कर रहे विद्यार्थियों, पाठकों, हिंदी प्रेमियों की हर समस्या का समाधान करने को सदैव उपलब्ध हैं और यथासंभव उन्हें उत्साहित भी करते हैं. हिंदी उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है.

ऐसे महान लेखक, शोधार्थी, साहित्यकार गोयनका जी और उनकी उपलब्धियों पर बहुत लिखा गया है, ऐसी स्थिति में जिज्ञासा होना स्वाभाविक है, वो कौन-सी स्थितियां, प्रेरणाएं, चुनौतियां या कारण रहे होंगे जिन्होंने उन्हें सफलता के इस शिखर पर पहुंचाया है. अपनी इस बातचीत द्वारा डॉ. पुष्पा सक्सेना ने गोयनका जी साहित्यकार से परे उनके निजी जीवन में झांकने का प्रयास किया है.

(डॉ. कमल किशोर गोयनका जी के साथ अमरीका प्रवास में एक अनौपचारिक वार्ता.)

▸ गोयनका जी, आज आपके महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान से हट कर अपने पाठकों के साथ आपके निजी जीवन में झांकने का प्रयास कर रही हूं. मेरे इस दुस्साहस को आप अन्यथा तो नहीं लेंगे?

'जी बिलकुल नहीं, पर मेरा जीवन तो एक खुली क़िताब है, जिसे कोई भी पढ़ सकता है. अगर आपको कुछ नया मिल सका जिससे मैं अपरिचित हूं, तो इसे अपनी उपलब्धि मानूंगा.' मुक्त हंसी चेहरे पर बिखर आयी थी.

▸ आपका जन्म स्थान कहां है? निश्चय ही आपके जन्म से वह नगर गौरवान्वित अनुभव करता होगा.

'सच्चाई यह है कि मैं अपने जन्म स्थान बुलंदशहर के प्रति आभारी हूं, जहां ११ अक्टूबर १९३८ को मेरा जन्म हुआ था. यह नगर मेरी यादों में सदैव रहेगा, जिसकी माटी में खेल कर मैं बड़ा हुआ हूं.' मुख पर यादों की परछाईं थी.

▸ अपने माता–पिता के विषय में कुछ बताने की कृपा कीजिए.

मेरे दादाश्री बद्रीनाथ गोयनका थे. पिताश्री सेठ चंद्रभान गोयनका तथा माताश्री का नाम इलायची देवी था. हम पांच भाई और दो बहिनों का परिवार उनकी स्नेहिल छाया में पला और पनपा. हमारा परिवार एक सघन वट वृक्ष सदृश्य था.

▸ आपके भाई बहिनों के विषय में भी कुछ जानने की इच्छा है, बतायेंगे?

मेरे बड़े भाई श्री श्याबिहारी लाल गोयनका मेरे दादाश्री के भाई द्वारा गोद ले लिये गये थे. दूसरे भाई श्री नवल किशोर गोयनका दिल्ली में इंज़ीनियर थे, पर अपने परिवार के प्रति दायित्व पूर्ण करने के बाद उन्होंने संन्यास ले लिया. मेरा जन्म तीसरे पुत्र के रूप में हुआ था. मेरे बाद मेरे दो भाइयों, विमल किशोर गोयनका तथा सुरेश गोयनका का जन्म हुआ था.

▸ क्या आपके ये दोनों भाई भी लेखक हैं या

डॉ. कमल किशोर गोयनका

डॉ. पुष्पा सक्सेना

कोई अन्य व्यवसाय करते हैं?

अपने परिवार में लेखक होने का एकमात्र अपराधी मैं ही हूं. मेरे ये भाई व्यापारी हैं और सुख समृद्धि का जीवन व्यतीत करते हैं. दुःख है विमल किशोर अब इस संसार से जा चुके हैं.

▶ यदि लेखक होना अपराध है तो मुझे लगता है, यह अपराध प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए. आपने बताया आपकी दो बहिनें भी हैं, वे कहां हैं?

मेरी बड़ी बहिन सुशीला देवी का विवाह हाथरस निवासी तथा कानपुर के जे. के. मिल्स के सर्वोच्च अधिकारी श्री नंदन प्रसाद सेकसरिया के साथ हुआ. उनका एक पुत्र राजेंद्र सेकसरिया एम. बी. ए. करके अमरीका में उच्च पद पर कार्यरत रहा. सुशीला देवी से छोटी बहिन सावित्री देवी का विवाह दिल्ली में चांदनी चौक के प्रतिष्ठित कपड़ों के कोठी वाले सत्य नारायण पोद्दार जी के साथ हुआ.

▶ बाल्यावस्था में आपका स्वभाव कैसा था, आप शांत या चंचल स्वभाव के थे?

अपने भाइयों में मैं सबसे अधिक चंचल, खिलाड़ी और दोस्तबाज़ था. बचपन में गुल्ली डंडा खेलना, कंचे-गोली और कैरम खेलना, पतंग उड़ाना और लूटना, होली पर हुड़दंग मचाना, जन्माष्टमी पर झांकी सजाना, नुमाइश में सैर सपाटे करना आदि में जीवन बीता. एक बार चोरी से फ़िल्म भी देखी, वो भी इस सावधानी के साथ कि कोई पहचान ना ले. उन दिनों केवल धार्मिक फ़िल्में देखने की ही इजाज़त होती थी, वह भी परिवार के साथ. घर का अंकुश था. ऐसे कामों के लिए केवल ख़ूब डांट ही नहीं खायी कई बार पिटाई भी हुई. (वर्षों पुरानी शरारतों की यादों से चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी.)

▶ आपके आज के शांत-गंभीर व्यक्तित्व को देख कर विश्वास नहीं होता कि आप बचपन में इतने शरारती थे. बचपन की कुछ ऐसी ही मीठी-खट्टी यादें, जिन्हें याद कर के आज भी ख़ुशी या दुःख होता है.

बचपन की बहुत सी घटनाएं तो अब याद नहीं हैं, परंतु कुछ ऐसी यादें हैं जो स्मृति में आज तक अंकित हैं. उस समय मैं शायद सात या आठ वर्ष का रहा होऊंगा. कक्षा दो में ऊपरकोट के म्यूनिस्पिल स्कूल में पढ़ता था. तख़्ती-बुदक्का तथा एक क़िताब का थैला ले कर स्कूल जाता था. स्कूल में सबसे पहले पहुंच कर घंटी बजाता था. यह घंटी चर्च की घंटी जैसी थी और जंजीर खींच कर बजायी जाती थी. मुझे घंटी बजाने के गर्व मिश्रित सुख के साथ ही सहपाठियों में महत्वपूर्ण होने का जो आनंद मिलता था, वह अभी तक स्मृति में अंकित है. स्कूल में सबसे पहले पहुंचना और स्कूल की घंटी बजाकर स्कूल खुलने की सूचना देना, उस उम्र में कक्षा में महत्वपूर्ण बनाता था.

▶ बाल्यकाल की कोई ऐतिहासिक घटना जो आपकी स्मृति में संचित है?

जी हां, लगभग उसी समय में भारत का विभाजन हुआ था. बहुत ही निकट के मुस्लिम मोहल्लों से 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगने लगे थे. हमारे मोहल्ले के अधिकांश निवासी सुरक्षा की दृष्टि से हमारी हवेली में आ गये. हमारी हवेली तीन मंज़िली मज़बूत बनी थी जहां दंगाइयों से बचा जा सकता था. वह दृश्य मैं आज तक नहीं भूल सका हूं. उस समय कैप्टन भगवान सिंह बुलंदशहर के कलक्टर थे. उन्होंने केवल दो सिपाहियों की मदद से मुस्लिम नेता को गिरफ़्तार करके शहर में शांति स्थापित की थी.

ऐसी ही दो और घटनाएं याद हैं. वर्ष १९५४ -५६

में एक बड़ा तीव्र भूकंप आया था, उस कठिन समय में अपनी सारी शरारतें भूल कर हमने मोहल्ले-मोहल्ले जाकर लोगों को बचाया था. इसी समय बुलंदशहर में बाढ़ आयी थी, उस आपत्ति के समय भी हमने लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया था. अब सोचता हूं, उस समय का जीवन कितना अच्छा था. बंधन तो थे, पर संघर्ष का ज्ञान नहीं था.

▸ मां द्वारा सुनाई गयी कोई स्मरणीय कहानी जो आपको आज तक याद है.

मेरी मां दूसरी कक्षा तक पढ़ी थीं और तेरह वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया था. मां स्वयं गीता का पाठ करती थीं, जब मैं बारह-तेरह वर्ष का था तब ही उन्होंने गीता का नियमित पाठ करने की मेरी आदत डलवा दी थी. मां सभी धार्मिक त्योहार पूरी श्रद्धा के साथ करती थीं. उनके द्वारा राम और कृष्ण की सुनाई गयी कहानियां मैं बहुत रुचि के साथ सुनता था. मेरे पिताजी भी धार्मिक विचारों के थे. मेरी दादी श्रीमती कुंजिकुंवर गोयनका जी ने मेरे दादाजी की स्मृति में विशाल मंदिर बनवाया था. परिवार के धार्मिक वातावरण के कारण मुझ पर भी हिंदू धर्म के जीवन मूल्यों का प्रभाव रहा है. मेरी सम्मति में हिंदू धर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म है.

▸ आपकी योग्यता और विद्वता के आधार पर मेरा अनुमान है, आप अपने विद्यार्थी जीवन में अवश्य पुरस्कृत और सम्मानित हुए होंगे. कुछ बताने की कृपा कीजिए.

पुष्पा जी, संभवत: आपका अनुमान पूर्णत: सत्य नहीं है. वैसे आपकी सूचनार्थ मैंने डी. ए. वी. डिग्री कॉलेज़ बुलंदशहर से सर्वाधिक अंकों के साथ बी. ए. किया था. इसी अवधि (१९५६-५८) में कॉलेज़ में कला-संस्कृति सचिव था. एक बार जयशंकर प्रसाद बन कर 'आंसू' के कुछ पदों का पाठ किया था और पुरस्कृत हुआ था. दिल्ली विश्वविद्यालय से वर्ष १९६१ में प्रथम श्रेणी में एम. ए., की डिग्री प्राप्त की और सम्मानित हुआ. विद्यार्थी जीवन की ये उपलब्धियां ही मेरी प्रेरणा बनीं.

▸ निश्चय ही आपकी प्रेरणा का ही परिणाम है कि आज आप इतने यशस्वी और पुरस्कृत साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं. यह जानने की जिज्ञासा है, कोई विशेष मित्र, अध्यापक /अध्यापिका जिन्होंने आपको प्रभावित किया?

जब मैं बी. ए. में था उस समय डॉ. हरीसिंह 'हरेंद्र' शास्त्री मेरे हिंदी के प्रोफ़ेसर थे. उनसे मैं बहुत प्रभावित था. एम. ए. में डॉ. नगेंद्र, डॉ. तारक नाथ, डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ. उदयभान सिंह, डॉ. विजयेंद्र स्नातक आदि ने बहुत प्रभावित किया. वे सभी विद्वान मेरे मार्गदर्शक थे. अपने इन गुरुओं को मैं कभी नहीं भूल सका. ये मेरे प्रेरणा स्रोत बने रहे और सदैव रहेंगे.

▸ शिक्षा के क्षेत्र में प्रारंभ से किस विषय में रुचि रही, क्या रुचि में परिवर्तन हुआ, यदि हां तो कारण क्या था? कक्षा की परीक्षाओं में आपका क्या सदैव प्रथम स्थान ही रहा?

मेरी रुचि विज्ञान में नहीं थी. विषय में अरुचि के कारण मैं फ़ेल हो गया. अगले वर्ष मैंने आर्ट्स के कोर्स में दाख़िला लिया. रुचिकर विषय होने के कारण दसवीं, बारहवीं तथा बी. ए. की परीक्षाओं में कॉलेज़ में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये. दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए. प्रथम श्रेणी में पास किया. असल में मेरी रुचि के विपरीत मुझे साइंस पढ़ने को मज़बूर किया गया तो उसका परिणाम असफलता में हुआ और जब रुचि के अनुकूल हुआ तो परिणाम निरंतर बेहतर होता गया. बुलंदशहर छोटा शहर था अत: वहां पढ़ाई केवल आजीविका अर्जन हेतु की जाती थी. छात्र की रुचि के अनुरूप उसे क्या शिक्षा मिलनी चाहिए इसकी समझ नहीं थी.

▸ क्षमा कीजिए, एक प्रश्न पूछने से अपने को नहीं रोक पा रही हूं. युवावस्था में आपका किसी के प्रति आकर्षण था, अथवा आपके सुदर्शन व्यक्तित्व के प्रति कोई आकृष्ट हुआ? हिंदी लेखक इसके लिए प्रसिद्ध हैं, अत: सवाल क्षम्य है.

मेरा यौवन काल स्वतंत्रता मिलने के बाद का है. यह वह समय था जब जीवन के नैतिक मूल्य प्रधान थे, संयम और अनुशासन एवं संयुक्त परिवार के नियम जीवन के अंग थे. मेरे बी. ए. करते समय को–एज़ुकेशन शुरू हो गयी थी, परंतु संबंधों में या तो दूरियां ही रहीं या तो भाई बहिन के रूप में ही संबंध बने. दिल्ली में एम. ए. करते समय जीवन का संघर्ष प्रमुख था. एक-दो लड़कियों के साथ केवल पढ़ाई की ही बातें होती थीं. आज जैसी स्थितियां तब नहीं थीं न कोई कल्पना ही थी.

▸ गोयनका जी आपके विवाह के संबंध में जानने की उत्सुकता है, कुछ बताने की कृपा कीजिए.

मेरा विवाह नवंबर सन १९६२ में हुआ था. मेरी बहिन सावित्री देवी पोद्दार एवं बहनोई द्वारा मुंबई के एक धनी मारवाड़ी परिवार की ओर से प्रस्ताव आया था परंतु लड़की दसवीं कक्षा तक पढ़ी थी. मैंने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया क्योंकि मैं समझ गया था कि धन संपदा ही जीवन नहीं है, उसमें शिक्षा और नयी दृष्टि भी ज़रूरी है.

▸ आपकी यह सोच तो प्रशंसनीय थी फिर सुरभित पुष्प सदृश्य कुसुम जी का आपके जीवन में किस प्रकार आगमन हुआ?

आप ठीक कह रही हैं, कुसुम जी मेरे घर में ख़ुशियों का सौरभ ले कर आयी हैं. एक मित्र के माध्यम से कुसुम जी के लिए प्रस्ताव आया था. तब कुसुम जी अर्थात मेरी होने वाली पत्नी बी. ए. में अंग्रेज़ी एवं हिंदी साहित्य जैसे विषयों के साथ अध्ययन कर रही थीं. अपने बहनोई और बहिन के साथ मैंने कुसुम जी से भेंट की. उस मुलाक़ात में मुझे उनकी साहित्यिक अभिरुचि का ज्ञान हुआ. हमारा संबंध हो गया. अब मैं कह सकता हूं कि मेरी पत्नी मुझसे अधिक साहित्य पढ़ती है और उस पर चर्चा या बहस करती हैं. वह एक कुशल गृहिणी और मां हैं. इमरजेंसी के समय जब मैं जेल में था उस समय उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वह एक साहसी पत्नी भी हैं. वह जीवन मूल्यों पर चलने वाली मज़बूत महिला हैं. हमारा गोयनका परिवार उन्हें बहुत सम्मान देता है. (मुख पर ख़ुशी मिश्रित गर्व छलक आया था.)

▸ आप तो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर रहे हैं, छात्रों के साथ अनुभव, समस्या आदि के विषय में कुछ बताने की कृपा कीजिए.

मैं १९६२ से २००३ तक दिल्ली के जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज़ में हिंदी का प्रोफ़ेसर रहा. इतने वर्षों के अनुभव का निष्कर्ष यह है कि अधिकांश विद्यार्थी केवल डिग्री लेने आते हैं और उच्च कोटि के छात्रों की संख्या ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होती. प्रथम श्रेणी के लिए तपस्या करने वालों की इतनी कम संख्या सोचने को विवश करती है कि उच्च शिक्षा केवल उपयुक्त छात्रों को ही दी जानी चाहिए.

▸ आपके निर्देशन में शोध करने वाले विद्यार्थियों के विषय में आप क्या जानकारी देना चाहेंगे?

मेरे निर्देशन में कई छात्रों ने पीएच. डी. की, पर एक भी छात्र अपने शोध-कार्य को आगे नहीं बढ़ा सका और नौकरी मिलने के बाद एकदम निष्क्रिय हो गया. विश्वविद्यालय के अधिकांश प्रोफ़ेसर भी शोध-निर्देशक बनने, शोध-प्रबंध के परीक्षक बनने, पाठ्यक्रम बनाने और इंटरव्यू आदि लेने में ही जीवन निकाल देते हैं और अपने शोध-कार्य के प्रति उदासीन हो जाते हैं. ऐसे प्रोफ़ेसर न तो ज्ञान की नयी खोजों को पढ़ते हैं और न अपने छात्रों को बताते हैं. प्रेमचंद संबंधी मेरी खोजों को तथा उन पर लिखी तीस पुस्तकों को यदि किसी प्रोफ़ेसर ने देखा या पढ़ा हो तो विस्मय ही होगा. इस स्थिति से शोध-वृत्ति को आघात लगता है और छात्र नवीन ज्ञान से वंचित रह जाते हैं. यह स्थिति तुरंत बदली जाना आवश्यक है अन्यथा ज्ञान का विकास रुक जायेगा.

▸ आपके जीवन की कोई घटना जिसने जीवन के प्रति दृष्टिकोण या दिशा बदल दी.

मेरा दिल्ली आना और दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. ए. (हिंदी) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करना मेरे जीवन की महत्वपूर्ण घटना है. यदि मैं बुलंदशहर में ही रहता और वहीं प्रोफ़ेसर हो गया होता तो मैं दिल्ली कभी नहीं आ सकता और प्रेमचंद के कामों की तो कल्पना भी नहीं कर सकता था. कई बार विस्थापन जीवन की दिशा बदल देता है और जीवन-संघर्ष के साथ उपलब्धियों को भी. दिल्ली ने मुझे जो रंगमंच दिया वह देश में कहीं भी नहीं मिल सकता था. मेरा आरंभिक जीवन संघर्षमय था, एक दो वर्ष गराज़ में रहा, गर्मियों में पार्क में सोता था. होटल में खाना खाता था, परंतु कुछ करने और बनने की संभावनाएं दिल को साहस देती थीं. कह सकता हूं कि दिल्ली आगमन ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी.

▸ गोयनका जी, प्रेमचंद पर आपका कार्य ऐतिहासिक महत्व का है. आपने उनकी समस्त कहानियां पढ़ी हैं प्रेमचंद की किस कहानी ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया? क्या इसी कहानी के कारण आप प्रेमचंद–साहित्य में अनुसंधान की ओर प्रवृत्त हुए हैं?

पुष्पा जी आप ठीक कहती हैं, प्रेमचंद की लगभग ३०० कहानियां हैं, उनमें से २५-३० कहानियां इनमें कालजयी हैं. ये सब जीवन को प्रभावित करती हैं. इनमें प्रेमचंद के देशप्रेम तथा मानव प्रेम का बहुत असर पड़ा है. उनकी आरंभिक कहानी 'अनमोल रतन' है, यह अनमोल रतन देशप्रेम है, देश के लिए बलिदान देना है रक्त की आख़िरी बूंद तक. इस कहानी को पढ़ेंगी तो नसों में रक्त का प्रवाह तेज़ हो जायेगा और देश के लिए मर मिटने का

उत्साह उत्पन्न हो जायेगा. प्रेमचंद के इस देश प्रेम को प्रगतिशील आलोचकों ने इसे काल्पनिक और भावुकता बताकर इसकी आलोचना की थी. कहानी में एक हिंदू सैनिक युद्ध में लड़ता हुआ 'भारत माता की जय' का नारा लगाता हुआ प्राण त्याग देता है.

▸ इस कहानी में आपने क्या नया देखा और उसे कैसे स्थापित किया?

मैंने प्रेमचंद के देश प्रेम को खोजा और उनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा को प्रमुख धारा के रूप में स्थापित किया. इसके साथ यह भी स्थापित किया कि प्रेमचंद साहित्य में भारतीय आत्मा की खोज की जो बात करते थे, वह इसी रूप में अभिव्यक्त होती थी. प्रेमचंद को मार्क्सवादी बनाना तथा भावुक बताना प्रगतिशील लेखकों की साज़िश थी जो अब तर्कहीन सिद्ध हो गयी है. उनकी भारतीय आत्मा का सार गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में 'मंगल भवन अमंगल दृष्टि है.' यही उनकी प्रसिद्धि और कालजयी होने का कारण है.

▸ गोयनका जी आप देश-विदेश में बहुत सर्वप्रिय हैं. आपकी ख्याति का कारण क्या आपकी विद्वता, मृदु-स्नेही-क्षमाशील-उदार स्वभाव है या कोई और कारण है?

आपके इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है. मैं सर्वप्रिय हूं या नहीं, यह मैं कैसे कह सकता हूं. हां, यह सत्य है कि विगत चार दशकों से मेरे आलोचक और प्रशंसक दोनों ही बड़ी संख्या में रहे हैं. प्रेमचंद पर किये गये मेरे कार्यों की प्रशसा हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने की है, जिनमें सर्वश्री जैनेंद्र कुमार, चंद्रकांत वांदिवडेकर, अमृतराय, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, विष्णुकांत शास्त्री, श्रीनारायण चतुर्वेदी, कृष्णदत्त, पालीवाल, कल्याणमल लोढा, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, इंद्रनाथ मदान, गोपाल राय, मृणाल पांडेय, लोठार लुत्से, गोपाल राय, अमृत लाल नागर, गोविंद नारायण, रमेशचंद्र शाह, बी. बी. कुमार, देवेश ठाकुर, विजयेंद्र स्नातक के नाम मुझे याद हैं.

▸ प्रशंसकों की इतनी लंबी संख्या के विपरीत क्या आपको अपने आलोचकों के नाम भी याद हैं?

मेरे कार्यों के आलोचकों में सर्वश्री नामवर सिंह, शिव कुमार मिश्र, मधुरेश, अजय तिवारी, सुधीश पचौरी आदि प्रगतिशील लेखक रहे हैं. ये सभी आलोचक कम्यूनिस्ट पार्टी के सेवादार के रूप में आलोचना करते हैं. अपनी पार्टी के अनुशासनवश इनका वैज्ञानिक आलोचना-विवेक कुंठित हो जाता है और साहित्य ही नहीं शोध कर्म भी पार्टी के अनुशासन में चाहते हैं. वास्तविकता यह है कि इनकी आलोचना ने भी मेरे कार्यों का विस्तार किया है और निरंतर स्वीकृति बढ़ती गयी.

जहां तक मेरे स्वभाव तथा शोध प्रवृत्ति का प्रश्न है, उसमें मेरे स्वभाव का योगदान भी अवश्य रहा होगा. मैंने आलोचकों के उत्तर सदैव नम्र एवं तर्कपूर्ण भाषा में दिये और प्रगतिशीलों की तरह अपशब्दों का न तो प्रयोग किया और न ही तर्क एवं तथ्यहीन बात ही कही. प्रगतिशीलों द्वारा फैलाये भ्रमों का खंडन भी मैंने तर्कपूर्ण भाषा में ही किया और अपनी स्थापनाओं को भी किसी आक्रामक भाषा या व्यवहार द्वारा प्रस्तुत नहीं किया.

यह संभव है कि मेरे स्वभाव तथा व्यक्तित्व के कारण मुझे कुछ स्वीकृति मिली हो, परंतु यह महत्वपूर्ण है कि आप ज्ञान की रेखा को कितना आगे बढ़ाते हैं. ज्ञान की दुनिया व्यवहार से नहीं, ज्ञान की उपलब्धियों से प्रभावित होती है और वही आपको पहचान देती है. मैं इतना कह सकता हूं कि मुझे अपने जीवन काल में समाज की स्वीकृति मिली और प्रेमचंद के संबंध में उनके वास्तविक रूप का ज्ञान हुआ. मेरे जीवन की इससे बड़ी सार्थकता और क्या हो सकती है?

▸ गोयनका जी, अपना व्यस्त और महत्वपूर्ण समय देने के लिए हार्दिक आभारी हूं.

पुष्पा जी, आपने यह तो बताया ही नहीं कि क्या मेरे जीवन में कुछ नया खोज सकीं? (वाणी में परिहास स्पष्ट था.)

▸ यह बात तो कुसुम जी और पाठकों से जानी जा सकती है. विश्वास है, वे कुछ नया और रोचक अवश्य पा सकेंगे. आज बस इतना ही, नमस्ते.

ए-९८ अशोक विहार,
फेज प्रथम
दिल्ली-११००५२
मोबाइल : ९८११०५२४६९
ईमेल-KKGOYANKA@GMAIL.COM

डॉ. पुष्पा सक्सेना
13819 NE 37th PL
Bellevue, WA 98005 USA

ग़ज़लें

✍ केवल गोस्वामी

दिल हाथों से जा रहा है संभालो इसको,
यह क्या गुल खिला रहा है संभालो इसको ।
दूर तक कोई नहीं जो सुने आवाज़ मेरी,
फरिश्ता मौत का आता है संभालो इसको ।
किसी से मिलने का वादा नहीं ख्वाहिश भी नहीं,
कौन फिर मुझको बुलाता है संभालो इसको ।
नहीं है देखने की ताव अब निग़ाहों में,
आइना कौन दिखाता है संभालो इसको ।
ग़ज़ल नहीं है राख़ है अरमानो की,
बिखर न जाये कहीं यारों संभालो इसको ।
चंद टूटे हुए सपने हैं मेरी झोली में,
एक है तुम्हारे नाम का संभालो इसको ।
दर्द में डूबे हुए ख़्वाब हैं निग़ाहों में,
यह कौन मुझको दिखाता है संभालो इसको ।

(२)

ख़ुद को ख़ुद से छिपा के देख लिया,
अपना दामन बचा के देख लिया ।
वो नहीं आयेंगे किसी सूरत,
उनका वादा भुला के देख लिया ।
उसकी कोशिश है कि आंख नम न हो,
उसने मेरा जनाज़ा देख लिया ।
हसरतें ढूंढ़ती फिरती हैं मुझे,
मैंने दिल को जला के देख लिया ।
भीड़ में कोई भी तो नहीं अपना,
मैंने जा-जा के वहां देख लिया ।

जे- ३६३, सरिता विहार, मथुरा रोड,
नयी दिल्ली- ११००७६.
मो. ९८७१६३८६३४.

✍ नवीन माथुर 'पंचोली'

ग़मों का काफ़िला जाता नहीं है।
ख़ुशी का सिलसिला आता नहीं है।
हमेशा मैं कहूं हर बात अपनी,
मुझे ये क़ायदा भाता नहीं है।
भरोसा जब उसे मुझ पर नहीं तो,
मुझे उस पर यक़ीं आता नही है।
गिनाता है वो मेरी ग़लतियों को,
कभी जो राह दिखलाता नहीं है।
लबों पर भी हंसी आती नहीं अब,
कभी दिल भी सकूं पाता नहीं है।

(२)

झूठ के बूते नाम कमाया जायेगा।
अफ़वाहों से दिल बहलाया जायेगा।
हमसे लेकर हमको ही देंगे लेकिन,
हम पर वो अहसान जताया जायेगा।
जितने उनकी बातों में आयें, उनसे,
लोकतंत्र का खेत जुताया जायेगा।
जाति-धर्म के जरिए पाये वो सत्ता,
हमको आपस में लड़वाया जायेगा।
लाभ दिलाए जायेंगे जो सरकारी,
सच्चाई का हक झुठलाया जायेगा।
नेक इरादे तोड़ेंगे, अब दंभ अपना,
गुस्ताख़ी का जश्न मनाया जायेगा।

अमझेरा,
जिला धार (म. प्र.)- ४५४४४१.
मो. : ९८९३११९७२४

'भारत-कोकिला' : सरोजिनी नायडू

✍ डॉ. राजम पिल्लै

'पुरोहितों, धर्मगुरुओं के लिए
उनके सिद्धांतों का आनंद;
राजाओं और सेनानियों के लिए
वीरकर्मों का यशोगान;
शांति विजित के लिए
और आशा बलवान हेतु-
मेरे लिए तो मेरे स्वामी!
उल्लास ही हो गीत का!

-सरोजिनी नायडू ('द बर्ड ऑफ़ टाइम')

ग्यारह वर्ष की उम्र में एक बालिका का कवि जीवन शुरू हुआ. तेरह से सत्रह वर्ष की उम्र के दौरान लिखी गयी उसकी कविताओं-गीतों का संग्रह स्वयं उसके पिता श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय ने 'सांग्स' शीर्षक से प्रकाशित किया. पर, तब किसी ने उस बालिका-किशोरी को 'बुलबुले-हिंद' नहीं कहा. वह सन १८९६ का समय था. कुमारी सरोजिनी चट्टोपाध्याय को घर-परिवार के एक सीमित परिवेश के सदस्यों अलावा और कोई जानता न था.

सन १९०५ में युवती श्रीमती सरोजिनी नायडू का काव्य-संग्रह 'द गोल्डन थ्रेशोल्ड' (स्वर्णिम देहरी) इंग्लैंड से प्रकाशित हुआ. सन १९१२ में उनका काव्य-संग्रह 'द बर्ड ऑफ़ टाइम' (काल-पंछी) भी इंग्लैंड से प्रकाशित हुआ. सन १९१७ में 'द ब्रोकन विंग' ('भग्न-पंख) इंग्लैंड से प्रकाशित हुआ. सन १९३७ में 'द सेप्टर्ड फ़्लूट' (रजतमंडित वंशी) इंग्लैंड में प्रकाशित हुआ और सन १९४३ में वही फिर से भारत में प्रकाशित हुआ. सन १९६१ में 'द फ़ेदर ऑफ़ द डान' (उष: काल का पंख) मरणोपरांत प्रकाशित हुआ.

सरोजिनी नायडू की सभी काव्य-रचनाएं अंग्रेज़ी में थीं और इंग्लैंड, भारत दोनों स्थानों पर उन्हें शुरूआत ही से बड़ी सराहना मिली, बड़ा सम्मान मिला. कालांतर में जब 'इंडियन इंग्लिश राइटर्स' की चुनिंदा रचनाओं विशेषकर, कविताओं के संग्रह प्रकाशित हुए तो सरोजिनी नायडू को उनमें गौरवमय स्थान मिला, आज भी मिलता है. बंगाल की तोरूदत्त के बाद महिला रचनाकारों में सरोजिनी का ही नामोल्लेख किया जाता है.

इंग्लिश जैसी वैश्विक भाषा की एक रचनाकार होने के बावजूद और इंग्लैंड में ही उनकी कतिपय कविताओं का प्रकाशन किये जाने के बाद भी सरोजिनी नायडू को उस समय किसी ने 'द नाइटिंगल ऑफ इंडिया' नहीं कहा.

सरोजिनी के व्यक्तित्व-विकास में वह पड़ाव कब आया जब उन्हें 'भारत-कोकिला', 'बुलबुले हिंद' और 'द नाइटिंगल ऑफ इंडिया' के रूप में सराहा जाने लगा, सम्मानित किया जाने लगा, लोकप्रियता के शिखर पर बिठाया जाने लगा?

सरोजिनी चट्टोपाध्याय-नायडू की जीवन कथा उस निर्झरणी की तरह है जो चट्टानों-पहाड़ों पर से सहज ही उछलकर समतल पर आती है और फिर एक गंभीर सरिता का रूप लेकर विशाल अगाध सागर में सम्मिलित हो जाती है.

सरोजिनी का प्रारंभिक जीवन :

सरोजिनी का जन्म १३ फ़रवरी सन १८७९ को हैदराबाद, दक्षिण भारत में हुआ. पिता थे बुद्धिजीवियों और राजपुरुषों में समान रुप से प्रतिष्ठित रसायनशास्त्री, शिक्षाविद, समाज सुधारक डॉ. अघोरनाथ चट्टोपाध्याय और माता थीं बंगाल के प्रगतिशील 'ब्रह्म समाज' और हैदराबाद की पारंपरिक तहज़ीब की संरक्षिका पर्दानशीन बेगमों, संभ्रांत महिलाओं के बीच समान रूप से सम्मानित बरदा सुंदरी देवी. सरोजिनी, आठ आई-बहनों में सबसे बड़ी थी.

डॉ. राजम पिल्लै

डॉ. अघोरनाथ का व्यक्तित्व अपने-आप में एक अद्‌भुत रासायनिक मिश्रण था. मूल स्थान बंगाल का ब्रह्मनगर, वेद-उपनिषद, कर्मकांड के ज्ञाता ब्राह्मण पंडितों का परिवार! पर बाहर, बंगाल में तो पाश्चात्य शिक्षा के रूप में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के द्वार खुल चुके थे; युवा वर्ग किसी सूर्यमुखी फूल की तरह उस प्रकाश-स्रोत की ओर अपना मुख परिवर्तन कर रहा था! अघोरनाथ ने आर्थिक अभावों के बावजूद भौतिक शास्त्र (फिज़िक्स) और रसायन-शास्त्र (केमिस्ट्री) में उच्चतर शिक्षा ग्रहण की; स्कॉलरशिप पाया और इंग्लैंड के एडिनबरा युनिवर्सिटी से फिज़िक्स में डॉक्टर ऑफ़ साइंस की उपाधि पायी; साथ ही रसायन-शास्त्र का अध्ययन भी जारी रखा. लेकिन विदेश में और अधिक व्यक्तिगत उन्नति करने, सम्मान और धन कमाने के प्रचुर अवसर उपस्थित होने के बावजूद वे भारत आ गये.

चट्टोपाध्याय परिवार का हैदराबाद-पर्व :

डॉ. अघोरनाथ को सन १८७८ में हैदराबाद आने और कार्य करने का निमंत्रण मिला, उन्होंने उसे स्वीकार किया और यहीं से चट्टोपाध्याय परिवार का एक नया जीवन-अध्याय शुरू हो गया.

डॉ. अघोरनाथ ब्रह्मसमाज के केशवचंद्र सेन के नेतृत्व में गठित 'नवविधान-संप्रदाय' के सदस्य थे. वे जाति-प्रथा और बाल-विवाह के विरोधी थे, स्त्री-शिक्षा के सक्रिय समर्थक थे, उनकी पत्नी केवल परंपरा के अंधानुकरण के तौर पर नहीं वरन विचारों और कार्यों से भी उनकी सहधर्मचारिणी थीं. अघोरनाथ ने हैदराबाद में एक अंग्रेज़ी माध्यम की पाठशाला खोली. बाद में न्यू हैदराबाद कॉलेज़ की बुनियाद डाली, जो बाद में निजाम कॉलेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ. न्यू हैदराबाद कॉलेज, हैदराबाद का सांस्कृतिक केंद्र बन गया. यहीं से सरोजिनी ने यह लोकतांत्रिक सबक सीखा कि किसी भी प्रकार का वैचारिक दुराग्रह, पक्षपात ग़लत है; मतभेद हो सकता है लेकिन मन-भेद नहीं होना चाहिए. सरोजिनी ने दशकों बाद सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय रूप से भाग लिया. लेकिन बचपन के ये संस्कार आजीवन उनके चरित्र का अभिन्न हिस्सा बने रहे. तभी तो यह जानकर आश्चर्य नहीं होता कि कैसे वे घोषित रूप से विरोधी-प्रतिद्वंद्वी महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सदैव मित्र बनी रहीं; उनके व्यक्तित्व के विधायक पहलुओं की प्रशंसा भी करती रहीं. कितना अविश्वसनीय-सा लगता है कि वे एक समय में ही डॉ. एनी बेसंट, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, बैरिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना और गांधीजी की मित्र रहीं, सहयोगी रहीं. उन्होंने किसी को न अपना शत्रु माना न प्रतिद्वंद्वी.

सरोजिनी – विद्यार्थी जीवन :

सरोजिनी को अपने परिवार-परिवेश में ही बांग्ला, अंग्रेज़ी, तेलुगु, उर्दू, फ़ारसी का ज्ञान मिलने लगा था. पिता ने बेटी की सहज प्रतिभा को पहचानकर और स्वयं स्त्री-शिक्षा का प्रबल समर्थक होने की वजह से, उसे पढ़ाई करने के लिए मद्रास भेज दिया. सरोजिनी ने सिर्फ़ १२ वर्ष की उम्र में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की और प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पाया. लेकिन इसके बाद के वर्षों में सरोजिनी के व्यक्तित्व का एक और पहलू खुलकर आया और यह भी आजीवन उनके चरित्र का अभिन्न अंग बना रहा. वे सहज प्रतिभा संपन्न थीं लेकिन महत्वाकांक्षी नहीं थीं, किसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए श्रम करना, अनवरत कर्मरत रहना उनके स्वभाव में नहीं था, सफल होना, सम्मान पाना, उनका लक्ष्य नहीं था और बाद में भी नहीं रहा, इसीलिए वे सहज ही एक कर्मक्षेत्र से दूसरे में संतरण कर सकीं. जो नहीं हुआ उसका कोई पछतावा नहीं, जो मिल गया उसका कोई अहंकार नहीं. कुंठा और ईर्ष्या दोनों से वह अपरिचित रहीं.

स्वर्णिम देहरी पर एक नवागंतुक :

डॉ. अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के बृहत्तर परिवार में नवागंतुकों और परिचितों का सिलसिला बना रहा था. उन्हीं में से एक थे एम. गोविंदराजुलु नायडू. प्रभावशाली व्यक्तित्व

और प्रखर प्रतिभा के धनी. किशोरी सरोजिनी और उनके बीच प्रेम-भाव उदित और विकसित होने लगा. पिता ने दोनों को विवाह-सूत्र में बंधने की अनुमति नहीं दी. मुख्य वजह यह रही होगी कि एक तो सरोजिनी अभी किशोरी थी और नायडू उनसे १० वर्ष बड़े थे. नायडू का ग़ैर-ब्राह्मण जाति का होना अपने-आप में बहुत महत्वपूर्ण नहीं रहा होगा क्योंकि ३ साल बाद उन्होंने स्वयं ही सरोजिनी का विवाह संस्कार, ब्रह्म-नव-विधान के अनुसार नायडू से कराया था.

सरोजिनी को हैदराबाद की निजाम सरकार की ओर से वजीफ़ा मिला और आगे अध्ययन के लिए वह सन १८९५ में इंग्लैंड रवाना हो गयी, कर दी गयी.

इस यात्रा ने सरोजिनी को दो महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किये. उसकी सहप्रवासिनी थीं थियोसोफ़िकल सोसाइटी, अडयार, मद्रास की शक्तिकेंद्र श्रीमती एनी बेसंट और बाद में इंग्लैंड में उसे मिले सहृदय साहित्यिक पथ-प्रदर्शक — एडमंड गॉस. सरोजिनी ने तब तक लगभग सभी महत्वपूर्ण अंग्रेज़ी कवियों को पढ़ डाला था और उनकी ही शैली और भाव-भूमि पर वह अंग्रेज़ी में कविताएं लिखने भी लगी थीं. गॉस ने उसे समझाया कि अंग्रेज़ी रचनाकारों की नकल भौंडी और बेमानी साबित होगी और सरोजिनी को अपनी रचना-प्रतिभा का प्रयोग भारतीय परिवेश का अंकन करने में करना चाहिए. गौस की वजह से अंग्रेज़ी रचनाकारों से सरोजिनी के सौहार्दपूर्ण संबंध बने और बाद में सरोजिनी के महत्वपूर्ण काव्य-संग्रहों का प्रकाशन इंग्लैंड में ही हुआ. जिनके नये संस्करण भले ही बाद में भारत में भी छपे हों.

सरोजिनी नायडू-सामाजिक, राजनीतिक एक्टिविस्ट :

सन १८९८ में सरोजिनी का विवाह डॉ. नायडू से संपन्न हुआ. उनके जयसूर्य, पद्मजा, रणधीर और लीलामणि ये चार संतानें हुईं और सरोजिनी गृहस्थिन की गौरवपूर्ण ज़िम्मेदारी कुछ वर्ष बिताती रही; उसके काव्य-संग्रह भी प्रकाशित होते रहे और पता नहीं कब, कैसे वे देश में चलती रही आज़ादी की लड़ाई में सम्मिलित हो गयीं. होमरुल आंदोलन स्त्री-शिक्षा का कार्य, स्त्री सशक्तीकरण के लिए संगठन कार्य करते-करते वे महात्मा गांधी के असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक-सत्याग्रह आदि से जुड़ती चली गयीं और अपने धाराप्रवाह, ओजस्वी, मंत्रमुग्ध कर देनेवाले भाषणों से इतनी लोकप्रिय होती गयीं कि उन्हें 'बुलबुले हिंद', 'द नाइटिंगल ऑफ इंडिया' और 'भारत-कोकिला' का विरुद मिल गया. सरोजिनी की वाग्मिता और भाषणशैली मात्र से पूरे जनसमुदाय को लंबे अरसे तक मंत्र-मुग्ध नहीं किया जा सकता था. उसके पीछे निष्ठा, कर्मठता और त्याग का ठोस योगदान होना भी ज़रूरी था.

सरोजिनी ने अपने कमज़ोर स्वास्थ्य के बावजूद अनेक विदेशी परिषदों में भारत का प्रतिनिधित्व किया, भारत की स्वतंत्रता की मांग को बड़े प्रभावशाली तरीक़े से देश-विदेश के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के समक्ष रखा. सरोजिनी नायडू की स्पष्टवादिता, उनकी तर्काधारित दलीलें, उनका अपना प्रभावशाली व्यक्तित्व उन्हें एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व में ढालता चला गया. सन १९२५ में सरोजिनी नायडू को कॉन्ग्रेस के कानपुर अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया. इस

''काव्य-वीणा सम्मान- २०१९'' हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित

कोलकाता की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना जागरण केंद्र **'परिवार मिलन'** विगत सन २०१३ से प्रति वर्ष हिंदी काव्य कृति के लिए ''काव्य-वीणा सम्मान'' दे रही है। इस वर्ष सप्तम् सम्मान हेतु इच्छुक रचनाकारों से वर्ष २००५ के बाद प्रकाशित अपनी छंद-बद्ध कृति की चार-चार प्रतियां एवं पासपोर्ट आकार के दो चित्र अपने संक्षिप्त परिचय के साथ परिवार मिलन कार्यालय (४, एस. एन. चटर्जी रोड, बेहाला, कोलकाता-७०००३८) में भेजने का आग्रह किया जाता है.

कृति के भाव पक्ष एवं कला पक्ष अर्थात हृदयस्पर्शी विषय वस्तु, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, लयात्मकता, सुललित छंद योजना तथा भाषा सौष्ठव पर विशेष ध्यान दिया जायेगा. सम्मान राशि रु. ५१,०००/- होगी तथा चयन समिति का निर्णय अंतिम एवं मान्य होगा. कृति भेजने की अंतिम तिथि दिनांक **३१.०१.२०१९** है।

पद पर नियुक्त होने वाली वे प्रथम भारतीय महिला थीं, इससे पहले डॉ. एनी बेसंट सन १९१७ में कॉन्ग्रेस की अध्यक्ष बनी थीं लेकिन वे जन्मना अंग्रेज़ थीं.

सरोजिनी नायडू का उत्तराधिकार :

सरोजिनी नायडू की संभवत: सबसे बड़ी देन है उनकी निर्भीकता, उनकी स्पष्टवादिता. वे सिद्धांत: 'फ़ेमिनिस्ट' ही कहलायेंगी लेकिन उन्होंने 'स्त्रीत्व' को न तो हथियार बनाया और न ही ढाल! उनके स्वभाव में, कार्यशैली में जो विशेषता थी वह पारंपरिक 'स्त्री-सुलभ' नहीं वरन सर्वकालीन 'मानव सुलभ' आचरण था. उनकी स्फटिक-सम पारदर्शिता ही उनकी शक्ति थी.

'भारत-कोकिला' – सरोजिनी नायडू :

''दुर्बल थे हमारे हाथ, पर
सेवा हमारी थी सुकोमल;
अंधेरे में हमने देखा सपना
तुम्हारी छटा के प्रभात का;
चुपचाप हम कोशिश कर रहे थे
कल के उल्लास के लिए,
और सोचा था तुम्हारे बीजों को
अपने दुखों के कुंओं से;
हमने मेहनत की, समृद्ध बनाने
तुम्हारे जागने के प्रफुल्ल क्षण को;
ख़त्म हुआ हमारा रतजगा;
देखो, निकल रहा दिन का उजाला!''

स्वतंत्र भारत में श्रीमती सरोजिनी नायडू को सन १९४७ को उत्तर प्रदेश की राज्यपाल नियुक्त किया गया. देश की वे पहली महिला राज्यपाल थीं. २ मार्च १९४९ को सरोजिनी नायडू का देहावसान हुआ. पर हर वैज्ञानिक, परावैज्ञानिक और आत्मवादी जानता है कि विश्व में किसी भी वस्तु का अवसान नहीं होता, केवल एक ऊर्जा, दूसरी ऊर्जा में रूपांतरित होती है — 'बुलबुले हिंद', 'भारत-कोकिला' की तान आज भी हमारे परिवेश में गुंजायमान है. अक्षुण्ण है, चिरंतन है.

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : pillai.rajam@gmail.com

मुक्तक

चंद्रसेन विराट

भाव को थोक में नहीं देखें
बुद्धि की ओक में नहीं देखें,
ये है कविता इसे भी तर्कों के
तीक्ष्ण आलोक में नहीं देखें.
सूक्ष्म आहट को शब्द देना है
थरथराहट को शब्द देना है,
कविता क्या? भाव के अमूर्तन को
छटपटाइट को शब्द देना है.
प्रज्ञ-प्रतिष्ठान भिन्न होते हैं
आत्म-अवधान भिन्न होते हैं
जो बड़े कवि हैं, ख़ास उन सबके
सूज्य–सोपान भिन्न होते हैं.
कोष को कितना भर चुके हैं वे
गढ़ के प्रतिमान धर चुके हैं वे
अंग्रेजों को प्रणाम हैं मेरे
काम सब कितना कर चुके हैं वे.
दंभ को ख़ुद ही मार दे पहले
निज अहम् को बिसार दे पहले
कवि से यह काव्य कह रहा है - सुन
अपना मस्तक उतार दे पहले.

१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी, आनंद बाज़ार के पीछे, इंदौर-४५२०१८ (म. प्र.)
मो. : ९३२९८९५५४०

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

मनुष्य के अतल मन की थाह लेती कहानियां

✍ डॉ. दामोदर खड़से

भीतर दबा सच (कहानी संग्रह) **– डॉ. रमाकांत शर्मा**
प्रकाशक - हर्ष पब्लिकेशंस, १/१०७५३, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मूल्य - ३५०/-

कहानी अपने समय, परिवेश, परिस्थिति का प्रतिबिंब होती है. वैसे तो सारा साहित्य ही इन सारी बातों का प्रतिनिधित्व करता है. काव्य में सांकेतिकता अधिक होती है. कहानी और उपन्यास में पात्रों के माध्यम से जीवंतता और रोचकता पिरोयी जाती है. सृजन के क्षणों में लेखक निरपेक्ष नहीं होता, वह किसी पात्र को जीते हुए अपनी प्रक्रिया में व्यस्त रहता है. इसीलिए शैली कोई भी हो, कहानी हमेशा प्रथम पुरुष का बयान लगती है. कथाकार कभी ऊंचाई से तो कभी पात्र के साथ चलते हुए कहानी बुनता है.

डॉ. रमाकांत शर्मा अपनी कहानियों के बीजों को रेखांकित करते हुए कहते हैं — ''हर व्यक्ति अपने को सही समझता है, यहीं से जीवन के द्वंद्व शुरू होते हैं और कहानियों का जन्म होता है..'' संग्रह की पहली ही कहानी 'भीतर दबा सच' ऐसी ही मानसिकता से उपजी है. संपत्ति और सौंदर्य का अहंकार दूसरों को नीचा दिखाकर फलता-फूलता है. बड़ी भाभी इस मुगालते में रहती हैं कि उनका ऐश्वर्य हमेशा इसी तरह बना रहेगा. लेकिन, समय ने पलटा खाया और ज़िंदगी का सारा वैभव चूर-चूर हो गया. तब जीवन उपेक्षित, तिरस्कृत और असह्य होता गया. ऐसे में यदि कोई उदार और दयालु व्यक्ति देवर के रूप में न मिलता तो जीवन मुहाल हो जाता. बड़ी भाभी के 'भीतर दबा सच' हालात के कारण स्पष्ट हुआ. कथाकार ने सहजता से कह दिया — 'ईश्वर कभी किसी को इतनी बेचारगी न दे कि वह किसी के भी पास, यहां तक कि अपने सगे-संबंधियों के पास भी अवांछित और बोझ बन कर रहे...' कहानी में मनुष्य के स्वभावगत व्यवहार का मनोविश्लेषण बहुत सूक्ष्मता से हुआ है.

यह संग्रह एक विशिष्टता लिये हुए है कि कहानियों में विविधता बहुत है. एक ओर जहां मनोविश्लेषण है, वहीं सामाजिकता भी है, परिवार बांधे रखने के लिए उदाहरण भी हैं, सांप्रदायिक भावावेश पर सदाशयता की कसौटी है और सतत अच्छाई की विजय पताका लहराती दिखती है. वह भी दिखावटी नहीं, बल्कि सहज, स्वाभाविक रूप से सब घटित होते चलता है क्योंकि अभी भी समाज में सकारात्मक शक्तियां हैं. कथाकार ने ऐसे ही सकारात्मक पात्रों के इर्द-गिर्द कथावस्तु का ताना-बाना बुना है. कथाकार शेष — ''सत्यम् शिवम् सुंदरम्'' का अनायास ही पक्षधर प्रतीत होता है. 'अकीदत' में कर्तव्य निर्वहन के दौरान पूजा और नमाज को लेकर आपस में तकरार होती है, लेकिन अंततः फर्ज सर्वोपरि होता है और सांप्रदायिकता पीछे छूट जाती है. कथाकार ने इसे सांप्रदायिक मुद्दे की कहानी होने से साफ़ बचा लिया है. चेतावनी यह है कि 'याद रखो, फर्ज भूल कर उसकी इबादत करोगे तो वह उसे कतई कुबूल नहीं होगी.'

'गुड्डी' कहानी 'दो वक़्त की रोटी खाने के लिए दूसरों की रोटियां बनाने को भाग्य समझने वाली' कामवाली युवती की मर्मस्पर्शी कहानी है. हमेशा मालिक और मज़दूर के बीच एक टकराव देखा जाता है. लेकिन, इस कहानी में गुड्डी की ईमानदारी और मालकिन की संवेदनशीलता देखते ही बनती है. हालांकि यह एक बिरला संयोग लग सकता है, पर मालकिन के व्यवहार से अंदर तक भीगी गुड्डी की यह कहानी अविश्वसनीय कतई नहीं लगती. मनुष्यता का यह दुर्लभ समीकरण सकारात्मक सोच की नींव रखता है. इसके विपरीत, सारी दुनिया को 'जूते की नोक पर' रखने वाला दिनेश बाबू सबको ठुकराता है. उसका अहं उसे निरंतर अकेलेपन की ओर ढकेलता है. प्रतिभावान होते हुए भी वह भावनाओं को नहीं पहचान पाता और उन्हें ठुकरा कर अंधेरेपन की गहरी खाइयों में गिरता चला जाता है. कथाकार ने प्रेम, समर्पण, अहंकार और अकेलेपन को बहुत सूक्ष्मता से रेखांकित किया है.

डॉ. रमाकांत शर्मा अपनी छोटी-छोटी कहानियों में मनुष्य के अतल मन की गहराइयों की थाह लेते हैं. मनुष्य अपने व्यवहार से अपने मन को प्रकट करता है. कहानी 'मां के चले जाने के बाद' एक पिता की भीतरी परतों में दबी भावना का बहुत प्रखर पल्लवन है. निरपेक्ष और कुछ हद तक नकारात्मक स्थिति में पहुंचने वाले पिता को जब यह पता चलता है कि उसका बेटा भी अपनी मां को खोकर कितना दुःखी है तो वह एक अपराध भाव से भर उठता है और उसे अपनी निष्ठुरता पर अफ़सोस होता है.

'एक पत्र की मौत' अद्भुत प्रेम कथा है. यह कहानी, इस बात को पुराने तथाकथित आदर्श के घेरे में न रख कर कि — सच्चा प्रेम त्याग में पलता है — उसे एक नया आयाम देती है. ऐसी ही कहानी 'सत्ताइस साल बाद' है जो असफल प्रेम की प्रौढ़ावस्था में याद के रूप में उजागर होती है. 'वह क्यों रोयी' मनुष्य की भीतरी संवेदनाओं और अच्छाइयों को उकेरने वाली कहानी है. 'भीतरी परतें' एक गाइड प्रोफ़ेसर के स्वभाव को प्रतिध्वनित करती कहानी है, जो बाहर से बहुत कठोर है और अंदर से बहुत संवेदनशील. कई बार कुछ दुर्घटनाएं मनुष्य की भीतरी परतों को खोलने में मदद करती हैं. 'वह बड़ा हो गया था' अभावों में पल रहे बचपन को अचानक बड़ा होते अनुभव करने की स्थिति में किसी भी मां को चौंका सकता है. 'मास्टर प्यारे लाल' एक ऐसे मास्टर की मार्मिक कहानी है जिसे निलंबन के बाद अपना परिवार चलाने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ा. उसकी स्थिति से वह उद्दंड विद्यार्थी भी द्रवित हो आया जो उसके निलंबन का कारण बना था. ज़िम्मेदारी, प्रेम और समर्पण के प्रतीक के रूप में 'मंदिर की सबसे ऊंची सीढ़ी' कहानी को देखा जा सकता है. प्रेम का सात्विक रूप जगमगाते भविष्य का प्रतीक बना जाता है. 'मैं भी कुछ हूं' अस्पतालों में मरीज़ों की दुर्दशा बयान करती कहानी तो है ही, मनुष्य के मन में पलती उस आकांक्षा को अभिव्यक्त करती कहानी भी है जिसमें वह अपने छोटेपन से उबरने के लिए अपने अधिकारों का इस्तेमाल दूसरों को छोटा दिखाने में करता है और उसका आनंद भी लेता है. कहानी 'मैं और नदी' का शिल्प नवीनता लिये है. नदी और स्त्री पात्र के जीवन की तुलना करती हुई यह कहानी नदी का सा प्रवाह लिये चलती है और पढ़ते समय वैसी ही ताज़गी का अहसास कराती है. कहानी 'उतरती धूप' समय रहते ज़िंदगी को जी लेने का संदेश देती है.

डॉ. रमाकांत शर्मा मानव मन की अतल गहराइयों में पहुंचकर पात्रों के सुख-दुःख से संवाद करते हैं. 'और कुछ जानना चाहते हैं आप?' कहानी की प्रमुख नारी पात्र यह प्रश्न करती है. नौकरीशुदा महिलाओं की त्रासदी, चुनौती और वरिष्ठ अधिकारियों की नज़र को उजागर करती यह कहानी अकेली कामकाजी स्त्री की व्यथा-कथा है. वह महसूस करती है कि अकेले रहना भी कोई आसान काम नहीं है. जाना-पहचाना हर पुरुष यह मानता है कि अकेली रहने वाली स्त्री उसके लिए उपलब्ध है. यह कहानी लालची दुर्व्यवहार और उसके प्रतिकार की कहानी है. 'ईश्वर अगर है तो' अलग तरह की कहानी है. यह कहानी ईश्वर की कल्पना के अलग-अलग आयामों को छूती हुई ईश्वर की मौज़ूदगी के अहसास को अनुभव कराने की एक कोशिश है.

वही कहानी मन में जगह बना पाती है जिसमें यथार्थ का पुट हो, रोचकताभरा बयान हो और मनुष्य की भीतरी परतों की दास्तान हो. इस दृष्टि से डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानियां खरी उतरती हैं. उनका कोई भी पात्र काल्पनिक नहीं लगता, वह जीता-जागता हाड़-मांस का मनुष्य होता है. कहानी की कहन सहज, स्वाभाविक और सरल शैली में होने से पाठकों के लिए रोचकता से भरी होती है. कहानियां पढ़ कर ऐसा लगता है कि हमेशा सदाशयता की जीत होती है. पात्र एक सात्विकता के साथ जीवन को देखते हैं और विपरीत स्थितियों में भी अपने को डिगने नहीं देते, यह कथाकार की सृजनात्मक जीत है.

इस संग्रह की कहानियों की भाषा बहुत सहज है, शैली कहानियों के मर्म तक पहुंचाने में सफल रही है. हर कहानी कोई न कोई संदेश देती है. यह संदेश, मौटे तौर पर लाउड न होकर मनोविश्लेषणात्मक ढंग से, मनुष्य के मन को अनेक आयामों, कोणों से निरूपित कर प्रस्तुत किया गया है. इन कहानियों की रोचकता और पठनीयता विशिष्ट गुण के रूप में उजागर होते हैं.

बी-५०३-५०४, हाई ब्लिस, कैलाश जीवन के पास, धायरी, पुणे-४११०४१
मो. : ९८५००८८४९६
ईमेल-damodarkhadse@gmail.com

लघुकथा विधा और हमारा समय

✍ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

कितने भस्मासुर (लघुकथा-संग्रह) – **योगेंद्र शर्मा,** **प्रकाशक** - नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२ मूल्य - २००/–

यद्यपि लघुकथाएं थोक के भाव लिखी जा रही हैं, लेकिन उनमें भी पाठकीय संवेदना और सोच को छू लेने वाली रचनाएं कम नहीं हैं. योगेंद्र शर्मा ने अपने लघुकथा संग्रह 'कितने भस्मासुर?' की 'अपनी बात' शीर्षक भूमिका में सही लिखा है कि लघुकथा लिखना गागर में सागर भरना है. इसमें संकलित अनेक लघुकथाएं अपने लाघव में वैविध्यपूर्ण यथार्थ हैं. यदि 'आम आदमी', 'चोर', 'गूंगी', 'डर का देवता', 'पहचान', 'विदाई', और 'सिलसिला' आदि लघुकथाओं में जन-साधारण के दु:ख दर्द केंद्रित हैं तो 'क़ैद', 'इंकलाब, 'एक जीवनी', 'एक भूल', 'संशोधन' में नारी की नियति मर्मस्पर्शी है. ये सभी रचनाएं अपने संक्षिप्त कलेवर में विसंगतियों और विडंबनाओं का प्रतिवाद करती हैं दुखदग्ध पीड़ितों और वंचितों के प्रति सहानुभूति जगाती हैं. 'बिछड़े हुए', 'नयी फ़सल', 'शिनाख़्त' सरीखी लघुकथाओं में सांप्रदायिकता से जुड़ी विकृतियां हैं. 'नयी फ़सल' में छोटे बच्चे का यह जान लेना कि पेट्रोल बम कैसे बनता है, यह संकेत है कि नयी पीढ़ी को कौन–सी विरासत सौंपी जा रही है. वर्तमान समय और समाज में बढ़ती अमानवीयता और संवेदनहीनता के दुष्परिणाम 'मज़बूर', 'पूजा', 'आंखें', 'अंत्येष्टि', 'प्रतिशोध', 'न्याय', 'पशु' आदि लघुकथाओं में अंकित हैं. ये रचनाएं बेहतर तरीक़े से मनुष्यता के क्षय की साक्षी बनी हैं.

इस संग्रह में राजनीतिज्ञों के चरित्र पर रचित 'नेता', 'मगरमच्छ', 'व्यवसाय', 'एक आदर्श विद्यालय' शीर्षक लघुकथाएं उनके कदाचार का अनावरण करती हैं और 'नींद', 'पूजा वाला घी' लघुकथाओं में बाज़ारवादी मानसिकता निशाने पर है. कुछ लघुकथाएं किसी न किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यंजित करती हैं. ऐसी रचनाओं में 'मानदंड', 'नानक दुखिया', 'शून्यवाद', 'दर्पण' आदि उल्लेखनीय हैं. 'बंद मुठ्ठियां' संग्रह की मार्मिक रचना है, जिसमें मनोवैज्ञानिकता के साथ सामाजिक विसंगति भी संबद्ध है. एक मां बिन ब्याहे ही शिशु को जन्म देती है, अत: मां बनने का उल्लास नहीं जी पाती है. वैभव और ख़ुशहाली के बावजूद सुख से वंचित लोगों की रामकहानी में भी मनोवैज्ञानिक स्पर्श है, 'अकेला', 'घर कहां है' इसी प्रकार की रचनाएं हैं. स्पष्ट है कि योगेंद्र शर्मा की लघुकथाओं का कैनवास बहुत व्यापक है और उसमें मौज़ूदा कुरुपताओं, संघर्षों और समस्याओं के यथार्थ चित्र अंकित हैं.

योगेंद्र शर्मा की लघुकथाएं सचमुच 'लघु' हैं और कम से कम शब्दों में अपने अभिप्राय की अभिव्यक्ति में सक्षम हैं. तीन पंक्तियों की लघुकथा 'जाति' इस सिलसिले में उद्घृत की जा सकती है—

'मनुष्य? अरे, मनुष्य जाति का तो नाम मत लो. मुझे इससे सख़्त नफ़रत है.

क्यों दादा?

अरे, हम मच्छर लाख बुरे सही, परंतु एक मच्छर दूसरे का ख़ून तो नहीं पीता.'

इस मच्छर-संवाद में मनुष्यता के पतन और अमानवीयकरण के उभार की भयावहता प्रत्यक्ष है. 'कंट्रास्ट' के माध्यम से दो स्थितियों या चरित्रों को आमने-सामने रखकर बिडंबना को उभारने का सिला कई रचनाओं में है. योगेंद्र शर्मा का व्यंग्य इन रचनाओं में बहुत मुखर है. 'अस्वस्थ', 'भेड़पुरा', 'चोर-संहिता', 'माटी का रंग' आदि लघुकथाएं गवाह हैं. कहीं कुछ प्रतीक चरित्रों के माध्यम से भी अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने में रचनाकार सफल है. 'अहसास' में 'रस्सी', 'ख़ुशबू में 'ख़ुशबू', 'प्रेमकहानी' में 'परवाना' की उपस्थिति दृष्टव्य है. कई लघुकथाओं में मिथकीय चरित्र—कृष्ण, द्रोपदी, विभीषण, भोलेनाथ, भस्मासुर, रुक्मिणी, राम आदि को आत्मसात किया गया है, लेकिन उनके द्वारा कोई नयी बात नहीं बन पायी. 'वापसी' में अवश्य एकलव्य और अर्जुन द्वारा बदलाव की दिशा इंगित की गयी है. अधिकतर लघुकथाओं में भरपूर संप्रेष्णीयता है. ये सामान्य पाठक के लिए भी बोधगम्य हैं, यह लघुकथाकार की एक बड़ी सफलता है. इस संग्रह को लघुकथा के पाठकों और आलोचकों के मध्य साधुवाद प्राप्त होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है.

✍ *डी-१०३१, रमेश विहार,*
अलीगढ़-२०२००१.
मो. : ९८३७००४११३

पृष्ठ ६ का शेष भाग...

यह भी कई बचपन में ही सीख जाते हैं. अब इस पर परिवार के 'डी एन ए' की भागीदारी कितनी होती है, इस पर तो कोई विशेषज्ञ ही बेहतर टिप्पणी कर सकता है. पर, है बात पते की!

स्तंभ 'आमने-सामने' में डॉ. हंसा दीप ने अपने जीवनकाल को तीन युगों में बांटा है. उन्हें हर युग में मसीहा मिलते रहे, कारवां चलता रहा. ख़ुशगवार संस्मरण! कहते हैं न 'ऑल वेल, दैट एन्डस् वेल!' 'सागर/सीपी' स्तंभ के अंतर्गत जयप्रकाश त्रिपाठी के गहन सवालों के विचारशील जवाब, डॉ. सुधाकर मिश्र की जुबानी, 'कवित्व ही मेरे जीवन का आदर्श है!' 'मैंने सदैव अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को सार्वभौमिक बनाने का प्रयास किया है... मैं कब गाता हूं, जनता ही गाती है, जनता की वाणी मेरी बन जाती है...!' मंचीय कविता का उल्लेख करते हुए मिश्र जी इस सच्चाई का बयान करने से भी नहीं चूके कि मंचों से इधर कविताएं कम चुटकुले ज़्यादा परोसे जा रहे हैं जो काव्य के लिए शुभ संकेत नहीं है... साहित्य समाज का प्रतिबिंब ही नहीं बल्कि दिशा निर्देशक और उन्नायक भी है. डॉ. राजम पिल्लै के 'औरतनामा' स्तंभ में आसीन हैं टी. बालसरस्वती जो 'पारंपरिक' (देवदासी परंपरा) भरतनाट्यम नृत्य शैली की शिरोमणि के रूप में भारत और पश्चिमी कला-जगत में प्रतिष्ठित थीं. स्वभाव से आधुनिक और क्रांतिकारी. डगलस एम. नाइट ने जो उनके दामाद थे, उनकी जीवनी लिखी है. जीवनी को जिस सुंदर भाषा–शैली में पिल्लै जी ने प्रस्तुत किया है, वह क़ाबिले तारीफ़ है. अशोक कुमार प्रजापति का कहानी संग्रह 'मंगेतर का मोबाइल' और भगवान वैद्य 'प्रखर' का कविता संग्रह 'रस्सी पर चलती लड़की' पत्रिका के स्तंभ 'पुस्तक समीक्षा' को संवारता है, कहानीकार स्वयं सच्चाई और नैतिकता के पक्षधर रहे हैं लेकिन रूढ़िवादिता के नहीं. उनका भोगा हुआ यथार्थ अपनी स्वाभाविक संवेदना के साथ कहानियों में उपस्थित हुआ है. प्रखर जी ने तो स्वयं भूमिका में लिखा है कि भीतर की आग को हर कोई प्रगट नहीं कर पाता, इसके लिए ज्वालामुखी-सी क्षमता ज़रूरी है. यह अंतर्भूत होती है लेकिन लगन और प्रयासों की मोहताज.

उपन्यास अंश में डॉ. रूपसिंह चंदेल की 'सज़ा' अपने आप में एक पूर्ण कहानी है. हरेक को अपने अनाचार की सज़ा उसी जन्म में भुगतनी ही पड़ती है. फिर उसे कर्म का फल कहो या प्रकृति की मार! 'बस्ती बुरहानपुर' शायद ऐसी कई सज़ाओं का आईना हो. पर कुछ सुधरने वाला नहीं. सबकी अपनी-अपनी फ़ितरत. लघुकथाएं बिखरी-सी पड़ी हैं हमारे ही आसपास. अब लेखक की कथा कहने की कला ही निर्धारित करती है उसका मूल्य. क्या वह मन को छूती हैं या कोरा 'वाक्या' भर रहकर मस्तिष्क पटल पर अंकित होने से पहले ही आंखों के दायरे से ओझल हो जाती हैं, यह एक नाज़ुक मामला है. वही, भीतर के ज्वालामुखी को याद करें तो बात साफ़ हो जायेगी. माना बंदर हमारा पूर्वज है पर साहित्यकार कदापि नहीं! राजेंद्र वर्मा की 'ज़ुर्माना', आनंद बिल्थरे की 'लालबत्ती', राकेश सुमन की 'धूप', मुकेश शर्मा की 'फ़ालतू चीज़' और नरेंद्र कौर छाबड़ा की 'मानसिकता' वानरिकता तो नहीं ना हो सकती! क्या कहूं? धर्मपाल महेंद्र जैन की बात (इसी अंक में) दोहराती हूं :

पेड़ बनना हो तो जड़ें भीतर, फैली हों,
तूफ़ां में उखड़ने का जोखिम नहीं फिर.

अजी साहब, डॉ. रामबहादुर चौधरी 'चंदन' ने तो मेरे ही डर को क़लमबद्ध कर दिया है :

अदालत भी ज़माने की बड़ी बेदर्द होती है,
गवाही के बिना सच भी यहां हो झूठ जाते हैं.

चलते-चलते सत्यदेव संवितेंद्र की कविता की कुछ पंक्तियां अपनी सफ़ाई में कहना चाहूंगी :

सिर्फ़ नहीं कुछ कहने को ही
कह देता हूं,
प्रश्नों से बतियाता मैं तो खोज रहा हूं
जाने कब से अपने भीतर एक सवेरा.

कहा-सुना माफ़...

– सविता मनचंदा
पी. २/८ ३, जरीना पार्क, अणुशक्तीनगर गेट के सामने, मानखुर्द, मुंबई- ४०००८८

प्राप्ति-स्वीकार

रूपसिंह चंदेल का साहित्यिक मूल्यांकन (गद्य) : **सं. डॉ. माधव सक्सेना अरविंद,**
अमन प्रकाशन, १०४-ए/८०सी, रामबाग, कानपुर-२०८०१२ मू. ७२५ रु.

इक्कीसवीं सदी का भारत (गद्य) : **डॉ. उमेश कुमार सिंह,** संदर्भ प्रकाशन, जे-१५४, हर्षवर्द्धन, भोपाल. मू. ३०० रु.

अमर बाबू : एक मनीषी की शब्द-यात्रा : सं. डॉ. मधु प्रसाद, २९, गोकुलधाम सोसा., चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४. मू. ३५० रु.

बंद मुट्ठी (उपन्यास) : **डॉ. हंसा दीप,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २७५ रु.

अक़ाब (उपन्यास) : **प्रबोध कुमार गोविल,** दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५. मू. ३०० रु.

जयपुर प्रीत की बांहों में (कथा-संग्रह) : **सं. प्रबोध कुमार गोविल,**
मोनिका प्रकाशन, ८५/१७५, प्रताप नगर, सांगानेर, जयपुर-३०२०३३. मू. ४०० रु.

अपने-अपने हिस्से का कबाड़ (कथा-सं.) : **निरुपम,** बोधि प्रकाशन, सी-४६, सुदर्शनपुरा इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. १५० रु.

हाफता हुआ शोर (कथा-सं.) : **नेसार नाज़,** किताब प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २०० रु.

मिशन एन. पी. ए, (कथा-सं.) : **रमेश यादव,** ४८१/१६१/बी, वि. वा. बिल्डिंग, एन. एम. मार्ग, चिंचपोकली, मुंबई-११. मू. २०० रु

अंधेरे के बीच (कथा-सं.) : **चित्रेश,** अंजुमन प्रकाशन, ९४२ आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठी गंज, इलाहाबाद-२११००३. मू. १५० रु.

छंटते हुए चावल (कथा-सं.) : **नीतू सुदीप्ति,** शब्द प्रकाशन, ए-२५, गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्पलेक्स, नयी दिल्ली-९२. मू. १४० रु.

हवा में तैरते सवाल (कथा-सं.) : **नंदकिशोर बर्वे,** बोधि प्रकाशन, सी-४६, सुदर्शनपुरा इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. १५० रु.

आख़िरी गेंद (कथा-सं.) : **राम नगीना मौर्य,** रश्मि प्रकाशन, २०४ सनशाइन अपार्टमेंट, कृष्णा नगर, लखनऊ-२२६०२३. मू. २०० रु.

आप कैमरे की निग़ाह में हैं (कथा-सं.) : **राम नगीना मौर्य,**
रश्मि प्रकाशन, २०४ सनशाइन अपार्टमेंट, कृष्णा नगर, लखनऊ-२२६०२३. मू. १२५ रु.

संकल्प और सपने (ल. संग्रह) : **सदाशिव कौतुक,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. १५० रु.

अकथ (ल. संग्रह) : **कमल चोपड़ा,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. ३५० रु.

यूं ही कोई मिल गया... (प्रसंगवश) : **मीता गुप्ता,** संवाद प्रकाशन, ३२६, कहरवान, बिहारीपुर, बरेली (उ. प्र.). मू. १०० रु.

एक ईंट का मकान (लेख सं.) : **अक्षय जैन,** १३ रशमन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई-४०००८०. मू. १२५ रु.

हरसिंगार, तुम झरते रहना (का. सं.) : **मधु प्रसाद,** २९, गोकुलधाम सोसा., चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४. मू. २०० रु.

साजिश के चलते (का. सं.) : **सदाशिव कौतुक,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. ३०० रु.

ये महकती शाम (काव्य) : **जयराम सिंह गौर,** शब्दोत्सव, के-२२१, यशोदा नगर, कानपुर-२०८०११. मू. १०० रु.

कब तक मन का दर्द छुपाते (काव्य) : **कमल सक्सेना,** संवाद प्रकाशन, ३२६, कहरवान, बिहारीपुर, बरेली (उ. प्र.). मू. २०० रु.

रस्सी पर चलती लड़की (क. सं.) : **भगवान वैद्य "प्रखर",**
बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से. ९, करतापुर इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. १५० रु.

एक यात्रा शब्दों की (क. सं.) : **अशोक आंद्रे,** इंडिका इंन्फोमीडिया, जेल रोड, नागल राया, नयी दिल्ली-११००४६. मू. १५० रु.

रक्तबीज आदमी (क. सं.) : **मोहन सपरा,** आस्था प्रकाशन, लाडोवाली रोड, जालंधर (पंजाब) मू. १६० रु.

जीवन है अनमोल (पद) : **राजेंद्र वर्मा,** उत्तरायण प्रकाशन, के-३९७, आशियाना कॉलोनी, लखनऊ-२२६०१२. मू. १०० रु.

खोजना होगा अमृत कलश (काव्य सं.) : **राजकुमार जैन "राजन,"**
अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २४० रु.

कोई बात नहीं (ग़ज़ल संग्रह) : **डॉ. मृदुल शर्मा,** ५६९ क/१०८/२, स्नेह नगर, आलमबाग, लखनऊ-२२६०२५. मू. १०० रु.

यादों की धरोहर (साक्षात्कार) : **कमलेश भारतीय,** आस्था प्रकाशन, लाडोवाली रोड, जालंधर (पंजाब). मू. २७५ रु.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१८"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१८ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१८ के चारों अंक **"कथाबिंब"** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७, ८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं या ई-मेल द्वारा भेजें. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्ष की तरह ही *सर्वश्रेष्ठ कहानी* (१५०० रु. - एक), *श्रेष्ठ कहानी* (१००० रु. - दो) तथा *उत्तम कहानी* (७५० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें कथाबिंब की त्रैवार्षिक सदस्यता (२०० रु.) प्रदान की जायेगी. कथाबिंब ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. नाही है कोई ठिकाना - नीतू सुदीप्ति "नित्या"	
२. सरलता - सुषमा मुनींद्र	
३. इंडियन क़ाफ्का - सुशांत सुप्रिय	
४. अहसान फ़रामोश -सिद्धेश	
५. तालाब की मछली - ताराचंद मकसाने	
६. प्रारब्ध - राजगोपाल सिंह वर्मा	
७. नदी और मैं - डॉ. रमाकांत शर्मा	
८. जुलूस - कामेश्वर	
९. काली माई का थान -डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव	
१०. बनते-मिटते रिश्ते - डॉ. कुंवर प्रेमिल	
११. गुरू दक्षिणा - मनोज कुमार "शिव"	
१२. सफ़ेद शॉल - माला वर्मा	
१३. दांव - महेंद्र सिंह	
१४. टापू - गोविंद सेन	
१५. रुतबा - डॉ. हंसा दीप	
१६. ऐसा भी होता है - सुधा ओम ढींगरा	
१७. भजनिया बॉस - हरी प्रकाश राठी	
१८. बुझती आंखों की उम्मीद - सुरभि बेहरा	
१९. झरता हुआ मौन - अमिता नीरव	
२०. कोई भी नहीं... - सैली बलजीत	

श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी (पं.)

७७, प्रभात सेंटर, सेक्टर १ ए, बस डिपो के सामने,
सी. बी. डी., बेलापुर, नवी मुंबई-४००६१४.
संपर्क : ९८२१२१९३०३, ९८१९०८१३१०

श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी न केवल मुंबई बल्कि पूरे देश की एक जानी पहचानी साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्था है जिसने नवी मुंबई से अपने साहित्यिक अनुभव की शुरुआत की थी, उस समय जब नवी मुंबई नया-नया बसा था और वहां पर साहित्यिक, सांस्कृतिक बियाबान था. ऐसे माहौल में **श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी** ने साहित्य का एक नन्हा सा पौधा रोपा. आज उस पौधे को इस विशाल रूप में देख कर आश्चर्यजनक गर्व होता है. **श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी** के अध्यक्ष अरविंद शर्मा "राही" हैं, जो कि देश के जाने-माने वरिष्ठ गीतकार हैं. प्रसिद्ध व्यंग्यकार लेखक मंच संचालक डॉ. अनंत श्रीमाली संस्था के महासचिव हैं और कोषाध्यक्ष देश के सुप्रसिद्ध कवि और साहित्यकार राजीव सारस्वत थे. अच्छी भली संस्था चल रही थी और पूरी मुंबई में अपनी एक विशिष्ठ अलग पहचान बना रही थी कि अचानक मुंबई में हुए बम विस्फोट में राजीव सारस्वत शहीद हो गये. उसके बाद **श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी** की दिशा बदल गयी एवं आम साहित्यिक संस्थाओं से अलग हटकर उसने एक नया संकल्प लिया जिन परिस्थितियों ने दिशा दी उसके अनुसार एक नया आंदोलन खड़ा किया जिसका नाम है "शब्द युद्ध आतंक के विरुद्ध." इस नारे के साथ श्रुति संवाद पिछले ९ वर्षों से राजीव सारस्वत सम्मान देश के वरिष्ठ कवि, लेखक, साहित्यकार, पत्रकारों को देती आ रही है. अब तक इसमें डॉक्टर अशोक चक्रधर, जगदीश सोलंकी, वेदव्रत बाजपाई, कुंवर बेचैन, श्रीमती माया गोविंद, डॉ. रामजी तिवारी, माणिक वर्मा, बुद्धिनाथ मिश्रा जैसे नामचीन साहित्यकारों को यह सम्मान दिया जा चुका है. पिछले वर्ष संस्था ने निर्णय लिया कि किसी वरिष्ठ कवि साहित्यकार को विशेषकर हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में कार्यरत विभूति को उसके जीवन काल की संपूर्ण सेवाओं के लिए याद करते हुए उसे सम्मानित करें. पिछले वर्ष यह सम्मान सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार कवि आश करण अटल को दिया गया है. यह संस्था का दसवां वर्ष है. इस वर्ष देश के वरिष्ठ नामचीन गीतकार श्री माहेश्वर तिवारी जी को यह सम्मान दिया जा रहा है और जीवन की संपूर्ण साहित्यिक सेवाओं के लिए सुप्रसिद्ध मंच संचालक और व्यंग्यकार सुभाष काबरा को यह सम्मान दिया जाएगा. अब संस्था एक आम संस्था नहीं रही बल्कि राजीव सारस्वत की शहादत ने इस संस्था को एक आंदोलन के रूप में खड़ा कर दिया है. यह संस्था अब इसी "शब्द युद्ध आतंक के विरुद्ध" ही काम कर रही है. इस १० वें वर्ष में यह अद्भुत निर्णय लिया गया कि पिछले ९ वर्षों में जिन साहित्यिक विभूतियों को राजीव सारस्वत सम्मान दिया गया है उन्हें ही आमंत्रित किया जाए और उनका काव्य पाठ करवाया जाए, लिहाजा इस वर्ष पिछले वर्षों में सम्मानित सभी विभूतियों को आमंत्रित किया गया है. यह संस्था समय-समय पर अन्य साहित्यिक कार्यक्रम भी आयोजित करती है. पिछले दिनों व्यंग्य-यात्रा के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय जी की अध्यक्षता में व्यंग्य पर केंद्रित यज्ञ शर्मा अंक पर चर्चा हुई इसके पहले आलोक भट्टाचार्य जो कि सुप्रसिद्ध कवि, मंच संचालक थे उन पर श्रद्धांजलि स्वरूप मुंबई प्रेस क्लब में एक कार्यक्रम का आयोजन हुआ. इस तरह समय-समय पर संस्था अन्य कार्यक्रम भी करती रहती है. यह संस्था बहुत सीमित साधनों में संचालित की जा रही है लेकिन अनवरत, लगातार यह साहित्यिक यज्ञ जारी है. अब संस्था आम संस्थाओं से हटकर एक उद्देश्य के साथ सार्थक काम में लगी हुई है. यह संस्था बहुत ही सीमित साधनों से संचालित की जा रही है.

अध्यक्ष
अरविंद राही

महासचिव
डॉ. अनंत श्रीमाली

संपर्क सूत्र : ए-१०, बसेरा, ऑफ घिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071. फोन : 25515541